सामयिक साहित्य-माला का १२वाँ पुष्प : सम्पादक श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

रोमांटिक छाया

(कहानी संग्रह)

लेखक—

—श्री इलाचन्द्र जोशी
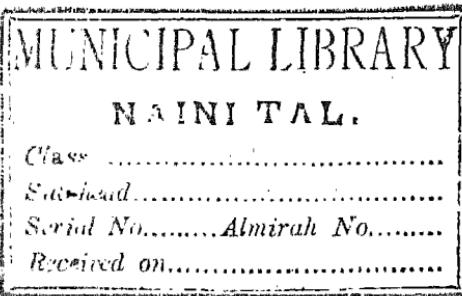
प्रकाशक

सामयिक साहित्य-सदन (रजि.)

लाहौर

प्रकाशक—
उमाशंकर त्रिवेदी एम. ए.,
व्यवस्थापक
सामयिक साहित्य-सदन
चेम्बरलेन रोड, लाहौर।

प्रथम संस्करण
मूल्य—सवा दो रुपये

मुद्रक—
जे. एस. पाल
बसन्त प्रिंटिंग प्रेस,
गनपत रोड, लाहौर।

सूची

चिट्ठी-पत्री

मुरादाबाद ३ अक्तूबर

प्यारी बहन,

आज मेरा जी कुछ उचाट-सा है। पास में कोई काम इस समय न होने से तुम्हें पत्र लिखने की इच्छा हुई है। जीवन की बहुत-सी पिछली बातें याद आ रही हैं। ऐसा मालूम हो रहा है, जैसे तुम से और अपनी विगत जीवन-संगिनी दूसरी लड़कियों से मिले हुये कई युग बीत चुके हों। मुझे ससुराल आये केवल दो ही महीने हुए होंगे; पर इतने ही अर्से में सारा पूर्व-जीवन स्वप्न की अस्पष्ट छाया की तरह मालूम पड़ने लगा है। तुम निश्चय ही मन-ही-मन मुस्करा रही होगी और कहती होगी—"मैं तो पहले ही कह चुकी थी कि ससुराल की हवा लगते ही तुम्हारा ढचरा ही बदल जायगा और इस जगत की बात भूलकर दूसरे ही संसार में विचरने लगोगी!" ठीक है; बहन, तुम ने ठीक

ही कहा था। वास्तव में मेरी दुनिया ही बिलकुल बदल गई है; और यही कारण है कि आज कुछ समय के लिये तुम्हारी दुनिया की याद आने से तुम लोगों के प्रति मैं एक ऐसे मोहक आकर्षण का अनुभव कर रही हूँ जैसा पहले कभी नहीं किया था।

यह जीवन एक स्वप्न नहीं है, जैसा कि अक्सर लोग कहा करते हैं, बल्कि इसके स्तर-स्तर में नाना प्रकार के विचित्र तथा भौतिक स्वप्नों का जाल बिछा हुआ है। आश्चर्य यह है कि एक स्तर के स्वप्नों से दूसरे स्तर के स्वप्नों का कोई सम्बन्ध, कोई संयोजक कड़ी कहीं नहीं दिखाई देती। यह एक बात ऐसी है, जो सबसे अधिक अनोखी; और कभी-कभी आतंक-जनक मालूम होती है।

खैर, इन सब फ़ालतू बातों को जाने दो। तुम अवश्य यह जानने के लिये उत्सुक होगी कि ससुराल वालों के साथ मेरी कैसी बनती है। मेरी ससुराल के लोग सब सुशिष्ट हैं। इनका वंश कुलीन होने से इन्हें अपने कुल की मर्यादा की रक्षा का बड़ा ख़याल रहता है, इसलिये कभी-कभी कुछ कड़ाई इनके व्यवहार में पाई जाती है। पर वास्तव में यह कड़ाई इन लोगों की गौरव-शीलता का द्योतक है, और मैं भली भाँति समझती हूँ कि मेरे प्रति इन लोगों के मन में यथेष्ट स्नेह की भूख वर्तमान है। जब कभी इस विषय में कुछ कमी पाई जाती है तो मैं निश्चित रूप से समझ लेती हूँ कि इसमें मेरा ही दोष है।

बहन, मुझे एक नया अनुभव ससुराल में हुआ है। तुम्हें यह

सुनकर आश्चर्य होगा कि मेरे सामाजिक विचारों में अब मूलतः परिवर्तन होने लगा है। मेरे मन में यह धारणा दृढ़ रूप से जमने लगी है कि अँगरेज़ी शिक्षा भारतीय समाज की शान्ति और शृंखला में अशान्ति और पारस्परिक वैमनस्य बढ़ाने के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं पहुँचा रही है। तुम्हें और भी अधिक आश्चर्य यह मालूम करके होगा कि मैं पर्दा-प्रथा की कट्टर पक्षपातिनी हो रही हूँ और पर्दे को नारी के सब से आवश्यक तथा सब से सुन्दर शृंगार के बतौर मानने लगी हूँ। एक जूनियर कैम्ब्रिज-पास लड़की को इस प्रकार का सुधार-प्रतिपन्थी मत प्रकट करते देखकर तुम्हारा चकित रह जाना स्वाभाविक है। पर विश्वास रक्खो, मैं अपने गहरे अनुभव से यह बात कह रही हूँ।

उस रोज़ लाला ब्रजमोहनलाल के लड़के के विवाह में मैं घर की दूसरी स्त्रियों के साथ गई हुई थी। वहाँ नई दुलहन को देखा। वह घूँघट काढ़े हुये थी और नई लाज के कारण बड़ी शालीनता के साथ सिर झुकाये बैठी थी। उसे छूते ही मेरा सारा शरीर पुलकित हो उठा और किसी अज्ञात कारण से अपूर्व शुद्ध और स्नेह के भाव हृदय में उमड़ उठे। घूँघट में यह कौन-सी भेदभरी शक्ति है? मैं ठीक कह नहीं सकती, पर चुम्बक का सा अज्ञात आकर्षण मैं इस में पाती हूँ। उस समय मुझे उस नव-विवाहिता लड़की पर ईर्ष्या होने लगी, जिसने सारे महिला-समाज की श्रद्धा तथा पुलक-भरे स्नेह का भाव अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। मैं सोचने लगी—'काश, कि मैं भी इसी प्रकार घूँघट काढ़

कर सलज्ज और सुमधुर नम्रता के भाव से सारे वायुमंडल को छा देती।" मुझे पूरा विश्वास है कि विवाह के बाद जब मैं प्रथम दिन निरावरण अवस्था में ससुराल वालों के सामने बेहयाओं की तरह बेपर्दा खड़ी हुई तो दर्शकों में से किसी की अन्तरात्मा ने मुझ पर वह स्नेहपूर्ण मंगलमय आशीर्वाद नहीं बरसाया, जैसा स्वयं मैंने तथा मेरे साथ की दूसरी स्त्रियों ने उस घूँघटवाली नव-वधू पर वर्षित किया। और उस आशीर्वाद का कितना बड़ा महत्व इस समय मेरे लिये है, यह बात शायद तुम न समझ सकोगी, बहन! क्योंकि भगवान की कृपा से तुम्हें उस संघर्ष का सामना नहीं करना पड़ा जिसने मेरा सारा जीवन-चक्र ही पलट डाला है।

मैं कितना चाहती हूँ कि मैं भारतीय समाज के सनातन आदर्शों को पूर्ण रूप में अपना लूँ; पर जिन संस्कारों से मेरा जीवन गठित हुआ है, उनके कारण क्या ऐसा होना अब सम्भव है? फिर भी मैं अपनी ससुराल वालों की कृतज्ञ हूँ कि वे मुझ-जैसी बेमेल स्त्री की बहुत-सी ऐसी बातों को सहन कर लिया करते हैं, जो उन के दृष्टिकोण में अक्षम्य हैं।

मुन्नू की कुशल लिख भेजना। जिस दिन मैं ससुराल के लिये रवाना हुई थी, उस दिन वह जिस तरह बिलख-बिलखकर रोया था, वह तुम ने भी देखा था। तुम जानती हो, मुझे छोड़कर वह अपने मन की बात यदि किसी व्यक्ति से कह सकता है तो वह

व्यक्ति केवल तुम हो। पिता जी उसके मन की बात कभी नहीं जान सकते और माता जी—वे सहृदय अवश्य हैं पर उनके स्वभाव से तुम परिचित ही हो। इसलिये कहती हूँ, बहन, कि उसकी ख़बर लेती रहना। शेष फिर--

तुम्हारी—
प्रमीला

इलाहाबाद १५ अक्तूबर

बहन प्रमीला,

तुम्हारा पत्र मिला। यह न समझना कि तुम्हारी मालती निरी मूर्ख है। तुम ने अपने मन में अपने ससुरालवालों की तारीफ़ के तो पुल बाँधे हैं, उन से उनकी योग्यता का परिचय उतना नहीं मिलता, जितना तुम्हारे हृदय की दुर्बलता और इच्छा-शक्ति के प्रभाव का पता चलता है। निस्सन्देह यह आश्चर्य की बात है कि तुम अंगरेज़ छोकरियों के साथ शिक्षा पाने के बाद भी पर्दा-प्रथा का गुण-गान करने लगी हो। शायद तुम यह सोचती हो कि तुम्हारा हृदय सचमुच पर्दा-प्रथा की महत्ता स्वीकार करने लगा है। पर यह निरा ढोंग है। तुम्हारा अभिमानी हृदय नाना सांसारिक तथा सामाजिक चक्र में दलित और पिष्ट होकर अन्त में अपने आप को ठगना चाहता है और नम्रता, दैन्य और विनय की चरम सीमा को पहुँच कर अपने अभिमान के भाव की तुष्टि करना चाहता है।

पर मुझे यह दीनता तनिक भी पसन्द नहीं है। मुझे प्रसन्नता तब होती, जब तुम उस अत्याचारी समाज के प्रति विद्रोह का भाव बनाये रहतीं, जो तुम्हें अपने लौह-यन्त्र में इस निर्दयता से पीस रहा है। मैं जानती हूँ कि तुम्हें इतने अधिक विरोधों का सामना करना पड़ा है, कि अन्त में तुम्हारे मन ने विद्रोह की लेशमात्र भावना को भी तिलाञ्जलि देकर, अपने को पूर्णतया समाज की बलि-वेदी पर समर्पित कर देना चाहा है। काश, मैं तुम्हारे स्थान पर होती। मैं स्वयं मरती भी तो अत्याचारियों को भी अपनी विद्रोहाग्नि से झुलसा-झुलसा कर मारती। पर तुम्हें विद्रोह की अपेक्षा सांसारिक पथ बहुत अधिक प्रिय है और लौकिकता के ख़िलाफ़ एक पग भी इधर-उधर चलने का साहस तुम में नहीं है।

तुम्हारे ससुराल वालों के अत्याचार की कहानियों से मैं बहुत-कुछ परिचित हूँ, इस लिये तुम उन्हें छिपाने की लाख चेष्टा करने पर भी मुझ से तुम्हारी कोई बात छिपी रह नहीं सकती, यह बात याद रखना। तुम स्वयं प्रयत्न करने पर भी असलियत छिपाने में असमर्थ सिद्ध हुई हो। तुम्हारी बातों को पढ़ कर मुझे दुःख जो कुछ हुआ सो हुआ ही, पर उस से अधिक तुम्हारी कमज़ोरी और अबलापन के भाव पर क्रोध आया।

मुन्नू अच्छा है। पर जब से तुम गई हो, तब से वह ऐसा उदास रहा करता है कि उसका चेहरा देखते ही मेरे हृदय में हाहाकार-सा मचने लगता है। उस दिन सन्ध्या को उसके पास

गई और उसका हाल पूछने लगी। उसे दिलासा देने की चेष्टा करते ही वह मेरे आँचल में अपना मुँह छिपा कर चुपचाप रोने लगा और टप-टप आँसू गिराने लगा। वह ऐसा अन्यमनस्क हो गया है कि तिमाही इम्तहान में फ़ेल हो गया, जिस की वजह से तुम्हारे पिता जी ने उसे खूब पीटा और विमाता जी ने (साफ़ करना, पर मैं उन्हें 'माता जी, कहकर आवश्यकता से अधिक श्रद्धा प्रगट करने में असमर्थ हूँ) भी बहुत - कुछ बुरा - भला कहा। तुम्हारे जाने के बाद दोनों ने बेचारे को पीटने और डाँटने की मात्रा बहुत बढ़ा दी है। मुझे उस पर बहुत तरस आता है, पर लाचार हूँ। कभी - कभी दिलासा देने के सिवा और कुछ नहीं कर पाती। केवल यही भरोसा है कि भगवान् उसकी रक्षा करेंगे। तुम्हें अधिक दुःख देना नहीं चाहती, इस लिये अब यहीं पर समाप्त करती हूँ।

तुम्हारी—मालती

पुनश्च—

तुम्हारा पत्र मैं ने सरजू भैया को दिखाया था, इसलिये उन्हें अवश्य ही दुःख हुआ होगा। क्या उन्हें इतनी जल्दी भूल गई?

× × × ×

मुरादाबाद, २ दिसम्बर।

बहन मालती,

तुम्हारा पत्र बहुत दिनों के बाद मिला, धन्यवाद! प्रमीला के सम्बन्ध में तुमने पूछा है कि ससुराल में उसके दिन आनन्द-पूर्वक कट रहे हैं या नहीं। उसका हाल कुछ न पूछो, बहन! उसका

बहुत बुरा हाल है। मुझे उस बेचारी के अन्धे और निर्दयी पिता पर बड़ा क्रोध आता है, जिन्होंने उसे अँगरेज़ छोकरियों के स्कूल में शिक्षा देने के बाद ऐसे कुसंस्कारों से घिरे हुये, दकियानूसी ख्यालातों वाले घराने में ब्याह दिया है। समाज और कुल का खयाल करके उन्होंने लाड़-प्यार से पली हुई गाय को इस कटघरे में डाल दिया है। उफ़! तुम उस अत्याचार की कल्पना भी नहीं कर सकतीं, जिस का शिकार वह बनी हुई है। कटघरे के पशु की हालत भी उससे कहीं बेहतर होगी। उसकी बेपर्दगी के लिये सारा परिवार उस पर बेहद बिगड़ा हुआ है। पर केवल पर्दे का अभाव ही उन लोगों की नाराज़गी का कारण नहीं है। प्रमीला में 'तिरिया चरित्र' का एकदम अभाव होने और उसके स्वभाव के सरल निष्कपट सौजन्य के कारण भी ससुराल वाले उससे हर समय असन्तुष्ट रहते हैं। घर की स्त्रियाँ, बच्चे और बड़े-बूढ़े सभी उसे बात-बात में कोसते रहते हैं, ताने कसा करते हैं, और (लिखते हुए दुःख होता है) ऐसे असंभव और भद्दे कलंक उस पर लगाते हैं कि कोई दूसरी स्त्री कभी का विष खाकर मर गई होती। पर इस अनोखी लड़की में विधाता ने न-मालूम पृथ्वी माता की तरह कैसी अपार सहनशीलता दी है कि नीम के घूँट की तरह सब की कड़वी से कड़वी बातें बेमालूम पी जाती है। उसका भीतर भले ही गन्धक की-सी आग से जलता हो, पर बाहर उसके मुख में सब समय अटल शान्ति झलकती रहती है। तुम कहती हो, वह जूनियर-कैम्ब्रिज पास है। इस बात पर विश्वास नहीं होता। बहन, आजकल की अंगरे-

ज़ीदाँ लड़कियों से उसके स्वभाव में रंचमात्र भी समता नहीं पाई जाती। आधुनिक नारी के स्वभाव का तीव्र विद्रोहात्मक भाव उसकी आत्मा में अणुमात्र भी वर्तमान नहीं है। समझ में नहीं आता कि उस की इस आश्चर्यजनक सहनशीलता की प्रशंसा की जाय या निन्दा। कभी इस बात के लिये उस पर बड़ा क्रोध आता है और कभी अपार श्रद्धा से उसके आगे हृदय झुक जाता है।

एक दिन मैं ने उसे न्योता देकर बुलाया! उसे जब मालूम हुआ कि तुम मेरे मामा की लड़की हो तो परम स्नेह से गले मिली और मेरी दो चार बातों से उसके धीरज का सब बाँध टूट पड़ा। वह सिसक-सिसक कर बेअख्तिआर रोने लगी। मेरी भी आँखों से बरबस आँसू निकल आये।

मैं अपने जासूसी चक्करों से उसके ऊपर किये जाने वाले अत्याचारों का सब हाल मालूम किये रहती हूँ। पर उस दिन उसने एक नई बात सुनाई। उसका एक जेठ है, जो वर्षों से बीमारी की हालत में पड़ा हुआ है। चूँकि वह कमाऊ नहीं है, इसलिये इस परिवार के स्त्री-पुरुष उसकी लम्बी बीमारी से उकता गए हैं और उसकी तरफ़ से प्रायः उदासीन-से रहा करते हैं। किसी को उस अभागे मरीज़ की सेवा का ध्यान नहीं है। प्रमीला से यह बात न देखी गई। वह वक्त-बेवक्त कभी उसे गरम दूध दे आती। कभी उसका पीकदान साफ़ कर लाती; कभी उसका बिस्तरा ठीक तरह से बिछाकर उसके आराम से लेटाने का उपाय कर देती। वह बेचारा खाँसता और कराहता हुआ उसे आंतरिक आशीर्वाद

दिया करता। प्रमीला की यह 'हरकत' न तो उस बुड्ढे और शराबी ससुर से देखी गई, न उसकी सास और ननदों से। चारों ओर से उस पर बेहूदा व्यंग से बुझे हुए ऐसे कठोर वाक्य-बाणों की वर्षा होने लगी कि सभ्य समाज में उसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

तुम निश्चय ही उसके पति का हाल पूछना चाहती होगी और तुम्हें आश्चर्य हो रहा होगा कि मैंने पत्र के प्रारम्भ में ही उसके पति का उल्लेख क्यों नहीं किया। यदि उसके सम्बन्ध में मुझे तनिक भी सन्तोष होता तो मैं अवश्य पहले ही उसका उल्लेख करती। पर सारा दुःख तो इसी बात का है कि पति का अत्याचार उस पर किसी से कुछ कम नहीं है। इस में सन्देह नहीं कि वह 'हिन्दू-कुल-तिलक, और अपने माता-पिता का परम भक्त है। पर इसी कारण अपनी निस्सहाय पत्नी पर उसका अत्याचार भी उससे अधिक प्रबल है। वह अपने परिवार और समाज को यह दिखाना चाहता है कि उस की जिस पत्नी से उस के माता-पिता नाराज़ रहते हैं उससे वह उन से भी अधिक घृणा करता है; क्योंकि ऐसा करना हिन्दू-धर्म के अनुसार उसका परम कर्तव्य है!

बहन, इस नराधम पति की बात तुम से क्या कहूँ। तुम्हें सुन कर मार्मिक कष्ट होगा। उस के शराबी पिता प्रमीला के ऊपर सुबह से ही बेतरह बिगड़े हुये थे। कारण? कारण कुछ भी नहीं, इस मकान में अकारण ही सब घटनायें घटा करती हैं। पिता के परम भक्त पुत्र ने अपनी भक्ति का चरम प्रमाण देने के उद्देश्य

से निरपराधिनी प्रमीला को एक ऐसी लात जमाई कि वह धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ी और चारों ख़ाने चित लेट गई ! जो मानसिक वेदना उसे पहुँची होगी, उसके आगे शारीरिक पीड़ा नगण्य है। तथापि तुम्हारी प्रमीला ने मुँह से 'उफ़' तक नहीं निकाला और चुपचाप उठ कर अपने पलंग पर जाकर लेट गई । सुनती हूँ, तब से वह अभी तक नहीं उठी और बुख़ार भी उसे आ गया है।

उस के नर-पशु पति की उस पर नाराज़ी का एक और रहस्य-मय कारण मैंने सुना है, जिसका उल्लेख करने से भी तुम्हारा रोआँ-रोआँ काँप उठेगा।

उस अभागिनी के लिये दुःखित रहने से कोई लाभ नहीं हो सकता, बहन ! स्त्री-योनि में जन्म लेने से इस प्रकार के निर्यातन अनिवार्य हो उठते हैं-जूनियर कैम्ब्रिज पास स्त्री के लिये भी विधाता ने वे ही नियम बनाये हैं, इसलिये भगवान् से तुम भी प्रार्थना करो कि अगले जन्म में पुरुष बन कर जन्म लेना पड़े ।

तुम्हारी स्नेहाकांक्षिणी

—जानकी

मुरादाबाद, ४ दिसम्बर ।

बहन मालती,

प्रमीला के जिस बुख़ार को मैं साधारण समझे थी, उसने उग्र रूप धारण कर लिया है। मैं उसे देखने गई थी। सारा मुँह तम-तमाया हुआ था और आँखे अस्वाभाविक रूप से चमक रही थीं।

पीड़ा से वह अत्यन्त व्याकुल जान पड़ती थी और अत्यन्त बेबस-सी होकर दीन भाव से कराह रही थी । मुझे देखते ही उसकी आँखें डबडबा आई । उसे अधिक बोलने की शक्ति नहीं थी । मुझ से उसने बहुत हलकी और मुरझाई आवाज़ में इशारे के साथ बैठने को कहा । डाक्टर ने उसकी बीमारी को न्यूमोनिया करार दे दिया है । यह एक आश्चर्यजनक काकतालीय है कि पति की लात की चोट से उसे बुखार आया और वही साधारण ज्वर न्यूमोनिया में परिणत हो गया ! पर विधि का विधान विचित्र है । चलो, अच्छा ही हुआ यदि इस रोग से उसकी मृत्यु हो जाय तो मुझे दुःख बड़ा भारी होगा, पर साथ ही इस बात की तसल्ली भी होगी कि बर्बर पशुओं से भी अधिक मनुष्यों के पञ्जों से उसे सदा के लिये छुटकारा मिल जायगा ।

पतिदेव के मित्र डा० कैलाशनाथ को तुम जानती होगी । बड़े सज्जन और सहृदय पुरुष हैं । वही प्रमीला का इलाज कर रहे हैं । इसी वर्ष उन्हों ने प्रैक्टिस शुरू की है, पर इतने ही अर्से में वह मुरादाबाद में काफ़ी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं । उन से मैं ने पूछा था । वह प्रमीला की अवस्था को सन्देहजनक बताते हैं ।

तुम्हारी

—जानकी

चिट्ठी-पत्री

मुरादाबाद, ६ दिसम्बर

प्रिय सरयू,

तुम्हारा पत्र मुझे समय पर मिल गया था, पर कई झंझटों के कारण उसका उत्तर न दे सका। तुम ने लिखा है कि...भाई, असल में बात यह है कि ... ... इधर मैं एक विचित्र रोगिणी के इलाज में व्यस्त हूँ। ज़ाहिरा तौर पर वह न्यूमोनिया से पीड़ित है, पर मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि उसकी किसी पीड़ा ने इस बीमारी का रूप धारण किया है। मैंने उसके ज्वर का कारण मालूम करने की बहुत चेष्टा की, पर कोई ठीक तरह से कुछ नहीं बता सका। सब ने केवल यही कहा कि कल उसके पति ने ज़ोरों से उसके लात जमाई थी, और इस घटना के कुछ ही देर बाद बुख़ार की हरारत शुरू हो गई। एक मनोवैज्ञानिक डाक्टर की हैसीयत से मैं यह कहूँगा कि उसका दीर्घ काल-व्यापी मानसिक पीड़न पति की लात से चरमावस्था को पहुँच जाने के कारण उसके अज्ञात चेतन ने एक घातक रोग का आश्रय पकड़ लिया। तुम कहोगे कि इतनी घातक बीमारियों को छोड़ कर उसने न्यूमोनिया का ही आश्रय पकड़ा? मनोविज्ञान इसका भी सन्तोषजनक उत्तर देने के लिये तैयार है, पर चूँकि मुझे इस समय अवकाश नहीं इसलिये मैं इस विषय को अधिक तूल देने में असमर्थ हूँ।

मुझे उस स्त्री के 'बीस्ट' पति से ऐसी नफ़रत हो गई है कि जब वह मेरे सामने खड़ा होता है तो इच्छा होती है कि उसे तत्काल 'शूट' कर दूँ। पर अफ़सोस है कि मुझ में इतना नैतिक साहस

नहीं है। लड़की अंगरेज़ी शिक्षा पाई हुई है और मैंने अपने मित्रों से सुना है कि स्वभाव और चरित्र में भी यह बहुत अच्छी है। और रूप ? उत्कृष्ट रोग की दशा में भी उसका जो सौंदर्य मैंने देखा, वैसा इस जीवन में शायद ही कहीं किसी का देखा हो। केवल शारीरिक सौंदर्य की बात मैं नहीं कह सकता। उसके चेहरे में एक ऐसा रहस्यमय तेज झलकता हुआ मैंने देखा, जो अनुपम था।

उसका पशु-पति उस रोज़ अत्यन्त दीन भाव से डबडबाई हुई आँखों से अपनी पत्नी के पलँग के पास बैठा था। मैं चाहता था कि उसके मुँह पर थूक दूँ। मैं समाज के इन दुष्ट कीटों के प्रति दया दिखाना घोर दुर्बलता समझता हूँ। पर मैं अत्यन्त आश्चर्य के साथ इस बात पर ग़ौर कर रहा था कि रोगिणी बीच-बीच में अत्यन्त सदय और सकरुण भाव से इस नराधम की ओर देख रही थी। उसकी आँखों के रुख से यह स्पष्ट झलकता था कि उसने अपने घोर नीच पति को केवल क्षमा ही नहीं किया, बल्कि उसके पश्चात्ताप की हालत पर तरस खाती हुई वह उसके प्रति मंगल-कामना भी वर्षित कर रही है। डाक्टर खड़ा है, पर उसके प्रति उसका तनिक भी ध्यान नहीं है; लेकिन पति की दीन दशा उससे बिलकुल भी नहीं देखी जा रही थी! मैं विस्मय-विमुग्ध होकर मन-ही-मन सोचने लगा—क्या यह लड़की सचमुच जूनियर कैंब्रिज पास है!

पत्र लिखते-लिखते मुझे एक आश्चर्यजनक प्रेरणा हुई है। मुझे याद है, लखनऊ में होस्टल में तुम अक्सर एक लड़की की

चर्चा हम लोगों से किया करते थे। जहाँ तक मुझे स्मरण है, उस लड़की का नाम भी प्रमीला था और मेरी रोगिणी का नाम भी वही है। तो क्या ?...नहीं भाई, पर बात सम्भव कैसे हो सकती है !

पत्र शीघ्र देना। अन्तिम बात के सम्बन्ध में मेरा यह कौतूहल बहुत बढ़ गया है।

तुम्हारा वही कैलाश नाथ

× × ×

इलाहाबाद, ७ दिसम्बर

प्रिय कैलाश नाथ,

तुम्हारा पत्र पढ़ कर मेरी मानसिक दशा कुछ विचित्र-सी हो उठी है। हाँ, यह अवश्य ही वही प्रमीला है, जिसकी चर्चा मैं तुम लोगों से किया करता था। तुमने पत्र में फ़ालतू बातें बहुत लिखीं, पर यह नहीं लिखा कि उसके जीने की कोई उम्मीद है या नहीं; क्योंकि इस समय यही एक बात ऐसी है, जिसका जानना मेरे लिये सब से ज़रूरी है। मेरी चचेरी बहन मालती के पास प्रमीला की बीमारी के सम्बन्ध में जो पत्र आये हैं, उनसे यही पता चलता है कि बीमारी खतरनाक है। पर जीने की कोई आशा है भी या नहीं, मैं यह बात बहुत शीघ्र जानना चाहता हूँ। काश कि तुम्हारे पास मैं भी उसके इलाज के लिये उपस्थित होता ! यह बात मैं इसलिये नहीं कह रहा हूँ कि मुझे तुम्हारी योग्यता पर विश्वास नहीं है। तुम जानते हो, मैं तुम्हारी योग्यता की

कैसी क़द्र करता हूँ। पर तुम यह बात भी समझ सकते हो कि प्रमीला के जीवन के वर्तमान संकट-काल में मुझे उसके पास उपस्थित रहने की इच्छा होना स्वाभाविक है। पर क्या यह सम्भव है? प्रमीला के ससुराल वालों का जो हाल मैंने सुना है, उससे तो यह बात मुमकिन नहीं जान पड़ती कि वे लोग मुझे उसके पास जाने देंगे।

पत्रोत्तर लौटती डाक से देना। तुम्हारा सरयू

× × ×

मुरादाबाद, ८ दिसम्बर।

प्रिय सरयू,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम यदि प्रमीला को देखने के लिये इस क़दर उत्सुक हो तो फ़ौरन चले आओ। मैं तुम्हें अपने सरकारी डाक्टर के बतौर वहाँ ले चलूँगा। इस बात पर किसी को भी एतराज़ नहीं हो सकता। उसकी हालत नाज़ुक होती चली जाती है, इसलिए तुम पत्र मिलने पर उसी दिन किसी गाड़ी से चले आना। विशेष बातें तुम्हारे आने पर होंगी।

तुम्हारा कैलाश नाथ

× × ×

एक्सप्रेस तार, मुरादाबाद, ६ दिसम्बर

६ बज के ३५ मिनट

आज सुबह ७½ बजे प्रमीला की मृत्यु हो गई। अब तुम्हारा आना व्यर्थ है।

कैलाश नाथ

× × ×

इलाहाबाद, १० दिसम्बर

प्रिय कैलाश नाथ,

आखिर मेरे देखे बिना ही प्रमिला की मृत्यु हो गई! मैं कौन ऐसा दैवी शक्तिशाली व्यक्ति था कि मृत्यु मेरा लिहाज़ करके दो-एक दिन ठहर जाती। पर कोई यही समझ सकता कि अन्तिम समय प्रमिला से एक बार भी न मिल सकने के कारण मेरी कितनी बड़ी हानि हो गई! कुछ भी हो इस घटना से मैं बड़ा भारी 'फेटेलिस्ट' हो गया हूँ और विधि-विधान के रहस्य को सम्भव स्वीकार करने लगा हूँ। खैर।

प्रमिला की चर्चा मैं बीच-बीच में तुम लोगों से अवश्य किया करता था, पर तुम उन बातों से इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते कि उसने मेरे जीवन में कितना बड़ा स्थान अधिकृत कर रक्खा था।

वह मेरी चचेरी बहन मालती की बाल्य-संगिनी थी। बड़ी शान्त-स्वभाव और अत्यन्त संकोचशील थी। मैंने उसे कभी अपने जीवन में एक बार भी हँसते हुए नहीं देखा—वह इतनी गम्भीर थी? अवश्य बीच-बीच में विशेष-विशेष अवसरों पर उसके मुख में सलज्ज मुस्कान की झलक दिखाई देती थी, पर हँसी-बच्चों की-सी बेधड़क हँसी—इस में कभी नहीं पाई गई। वह बहुत कम बोलती थी और बहुत धीरे। कैसी ही संकटजनक अथवा उत्तेजक परिस्थिति क्यों न आ पड़े, पर उसे कभी ज़ोर से बोलते नहीं सुना गया। वह इतना कम बोलती थी कि कोई गिनने वाला

होता तो आसानी से मालूम कर सकता था कि वह प्रति दिन कितने इने-गिने शब्द मुँह से निकाला करती है। मैं इन छोटी-छोटी बातों का उल्लेख इस लिये कर रहा हूँ कि उनसे उसकी रहस्यमयी प्रकृति का थोड़ा-बहुत परिचय तुम्हें प्राप्त हो सकता है। शान्ति, सौजन्य, सहृदयता, सरलता, लज्जा तथा सरस गांभीर्य का अपूर्व समन्वय उसके चरित्र में पाया जाता था। तिस पर वह अद्भुत रूपवती थी, जिसके साक्षी तुम स्वयं हो और यथेष्ट शिक्षा-प्राप्त। यदि वह मेरी ओर कभी आँख उठाकर भी न देखती तो भी उसके इन मिश्रित गुणों का प्रभाव मुझ-जैसे भावुक व्यक्ति के ऊपर पड़े बिना न रह सकता था। जिस पर मेरी अभिमानी आत्मा को यह सन्देह होने लगा था कि वह मेरे प्रति उदासीन नहीं है। स्मरण रहे, मैं 'सन्देह' कह रहा हूँ, 'विश्वास' नहीं! क्योंकि अन्त में उसके मन की यथार्थ बात मालूम न कर सका। उसके स्वभाव की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि अपने मन की कोई भी बात किसी पर तनिक भी प्रकट नहीं होने देती थी। किसी घनिष्ठतम रूप से परिचित व्यक्ति से भी नहीं। कुछ समय तक मालती का यह विश्वास था (और इस बात पर बड़ा गर्व भी था) कि वह प्रमिला के मन की बहुत-सी बातें जानती है। पर पीछे उसका यह भ्रम दूर हो गया था। वह वाह्य-संसार में विचरण करते रहने पर भी वास्तव में अपने अन्तर्जगत में ही निवास करती थी—जहाँ वह अवश्य ही विमुक्त और निर्द्वन्द्व विचरती होगी।

आज मुझे बहुत सोचने पर यह बात निश्चित रूप से प्रतीत

हो रही है कि इस स्वार्थमय वास्तविक संसार में वह अपने को प्रवासिनी और विदेशिनी-सी समझती थी और यहाँ के प्रत्येक प्राणी को शंका और सन्देह की दृष्टि से देखा करती थी, कि न—मालूम कौन कब उसके विरुद्ध कैसा षड्यन्त्र रच बैठे ? अपने अन्तर्जगत् की वह रानी थी, इसलिये वहाँ उसे किसी प्रकार का भय नहीं था। वहाँ वह अवश्य ही कुछ संगियों तथा संगिनियों के साथ खेला करती होगी, पर वे संगी कौन थे और संगिनियाँ कौन थीं, इस बात का पता बिधाता को ही शायद लग सके।

उस की माँ मर कर एक छोटे भाई की रखवाली का भार उसे सौंप गई थी। उसकी विमाता वैसी ही थी, जैसा कि इस कुसंस्कारों से भरे हुये देश में विमाताओं को होना पड़ता है। उसके पिता के हृदय में अवश्य ही अपने बच्चों के प्रति स्नेह का भाव रहा होगा, पर वे स्नेह जताना नहीं जानते थे, वरन उनके व्यवहार मे विशेष कठोरता प्रकट होती थी। उसके एक चाचा थे, जो उसे और उसके भाई को जी-जान से चाहते थे। वे कलकत्ते में व्यापार करते थे और वहाँ से अपनी भतीजी और भतीजे के लिये प्रति मास आवश्यकता से अधिक रुपये, बढ़िया-बढ़िया कपड़े और दूसरी दामी चीज़ें भेजा करते थे। जब कभी वे इलाहाबाद आते या प्रमिला कलकत्ते जाती तो वह अक्सर प्रमिला के लिये जीवन में सब से अधिक आनन्दकर होता। उसके चाचा की ज़िद के कारण ही उसे अँगरेज़ छोकरियों के स्कूल में पढ़ना पड़ा था, वरना उसका स्वाभाविक झुकाव भारतीय शिक्षा की ओर ही था। यही कारण

था कि जूनियर कैम्ब्रिज तक पढ़ने और अँगरेज़ छोकरियों के संसर्ग में रहने पर भी उसके भारतीय स्वभाव में आँच भी नहीं आने पाई थी। यदि यह बात किसी अपरिचित व्यक्ति से कही जाय तो वह अविश्वास पूर्वक हँसेगा। तुम स्वयं प्रमिला के स्वभाव से बहुत कुछ परिचित हो गये हो।

पहले कह चुका हूँ कि मालती के पास वह आया-जाया करती थी। इसी सिलसिले में उसके साथ मेरा घनिष्ठ परिचय हो गया था। पर यह केवल बाहरी परिचय था। उसके भीतर का परिचय मैं अन्त तक प्राप्त न कर सका, यद्यपि मुझे यह विश्वास है कि उसकी नीरव, किन्तु मर्म-भेदी दृष्टि मेरा भीतरी परिचय पा गई थी। वर्षों तक हेल-मेल रहने पर भी उसने कभी मेरे साथ अधिक बातें नहीं कीं। वह केवल मेरे प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर अत्यन्त नम्रता तथा सौजन्य के साथ दे दिया करती थी, पर स्वयं उसने कभी मेरे साथ किसी विषय की चर्चा नहीं छेड़ी। किन्तु उसकी नीरवता में भी एक ऐसी रहस्यभरी सहृदयता थी, जो बीच-बीच में बरबस मुझे यह विश्वास दिलाना चाहती थी कि वह मेरे प्रति उदासीन नहीं है। पर यह विश्वास स्थायी नहीं रहता था और मेरा मन अभी तक सन्देह और दुविधा के झूले में झूलता रह गया है। फिर भी मुझे एक बात का सन्तोष है। वह यह कि मुझे जीवन में एक ऐसी नारी से परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिस में असाधारण गुण वर्तमान थे। उसने पहले ही मुझे कभी नहीं चाहा हो, पर मैं उसे बड़ा चाहता रहा हूँ और चाहता रहूँगा और

अपनी इस चाह के कारण अपने को धन्य समझता हूँ। क्योंकि मुझे इस बात पर विश्वास हो गया है कि विधाता की इस सृष्टि में कुछ निराली आशाएँ ऐसी भी होती हैं, जो किसी प्रकार की पार्थिव चाह या लगावट से दूर होती हैं और जिन की सरस तथा करुण स्नेह-धारा सब पर समान रूप से बरसती है। ऐसे महान् आत्माओं से परिचित होने का सौभाग्य बहुत कम लोगों को होता है। इसीलिये उन्हें चाहने वालों को भी मैं धन्य मानता हूँ।

विह्वल आवेग के कारण बहुत-सी बेसिर-पैर की बातें लिख कर समय नष्ट किया है, क्षमा करना।

तुम्हारा

सरयू

× × × ×

इलाहाबाद, १६ दिसम्बर

बहन जानकी,

तुम्हारा पत्र समय पर मिल गया था। अनेक झंझटों में पड़ने और चित्त की अशान्ति के कारण अभी तक उत्तर न दे सकी, क्षमा करना।

प्रमिला की मृत्यु का शोक लगा ही था कि इस बीच एक दूसरी दुःखदायी घटना हो गई। इधर कुछ दिनों से सरयू भैया लापता हैं। बिना किसी से कुछ कहे-सुने वे न-मालूम कहाँ चल दिये। इस बात का कुछ भी पता अभी तक किसी को नहीं लगा।

तुम्हारी स्नेहकांक्षिणी—

मालती

क्रय-विक्रय

'मैं आज अच्छी तरह जान गई हूँ कि तुमने क्या सोच कर मुझ से ब्याह किया था ! ब्याह के पहले तुमने जब पहले पहल मुझे देखा था, उस दिन तुम्हारी दृष्टि में क्या भाव छिपा था, वह बात तब मेरे आगे स्पष्ट नहीं हो पायी थी। आज मैं उसका मर्म बिल्कुल ठीक समझ पायी हूँ। तुम अपनी आँखों में मेरी नाप-जोख कर रहे थे, मेरा वजन ले रहे थे और मेरा मूल्य आँक रहे थे—इस उद्देश्य से कि यह कचा माल पका होने पर बाज़ार में कितने दामों पर बिक सकेगा...' कौच के कुशन पर अपना नंगा सिर रख कर अधलेटी अवस्था में मालिनी ने कहा। उसकी भौंहों में, आँखों में, नाक के छिद्रों में और ओठों में घोर घृणा, भयंकर क्रूरता और दृढ़ निश्चय के मिश्रित भाव वर्तमान थे।

राजेन्द्र को अपनी पत्नी की ये बातें एक दम अप्रत्याशित-सी लगीं। वह विस्मित भाव से आँखें फाड़-फाड़ कर कुछ देर तक बेवकूफ़ों की तरह उसकी ओर देखता रह गया ! जब कुछ सँभला तो मुँह पर भय और क्रोध से पूर्ण एक अत्यन्त विकृत भाव

झल्लाता हुआ बोला—'क्या कहा ? मैंने तुम्हें बेचने के लिये तुमसे विवाह किया ? कृतघ्नता की भी एक सीमा होती है ! तुम्हारे पिता को अपनी लड़की के लिये कोई वर नहीं मिल रहा था। ग़रीबी और हीन कुल के कारण कोई तुम से विवाह करने को तैयार नहीं हो रहा था। तुम्हारे पिता की अत्यन्त दयनीय दशा देख कर और तुम्हें एक नेक लड़की समझ मैंने तुमसे विवाह करना स्वीकार किया। विवाह करने के बाद मैं इस बात की पूरी कोशिश करता रहा कि तुम्हें मेरे साथ किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे। तब मेरी आर्थिक स्थिति कैसी थी, यह बात तुमसे छिपी नहीं है। तिस पर भी मैंने भरसक तुम्हारी किसी भी माँग की उपेक्षा नहीं की। स्वयं फटेहाल रह कर भी तुम्हें अच्छे कपड़े पहनने को दिए, स्वयं रूखा-सूखा खाकर भी तुम्हारे लिये खाने-पीने में किसी चीज़ की कमी नहीं रहने दी। दोनों जून अपने हाथों से खाना बना कर तुम्हें खिलाया। तुम्हें भरसक घर का कोई काम नहीं करने दिया और रोज़ या तो तुम्हें सिनेमा दिखाता रहा या प्रतिष्ठित समाज के स्त्री-पुरुषों में तुम्हें मिलाता रहा। इतने निश्चित प्रमाणों के होते हुए भी तुम कह सकती हो कि तुम्हें बाज़ार में बेचना मेरा उद्देश्य था, इससे बढ़ कर अकृतज्ञता की कल्पना मैं नहीं कर सकता !'

मालिनी उचक कर सीधी तरह बैठ गई और पहले की अपेक्षा अधिक उत्तेजित अवस्था में बोली—'तुमने मुझे खुश करने, मुझे आराम से रखने, मुझे फ़ैशनेबुल बनाने के लिये सब कुछ किया,

मिस्टर सिंह से मिलने पर मैंने कुछ दूसरी ही आँखों से उन्हें देखा। तुम्हारी धूर्तता का अर्थ तब तक मेरे आगे कुछ-कुछ स्पष्ट हो चुका था और तुम्हारी पुरुषत्व हीनता का पता भी उस एक घटना से मुझे मिल चुका था। इसलिये मेरे निष्कलंक हृदय में उसकी जो प्रतिक्रिया हुई, उसका फल यह हुआ कि एक निराले ही पाप का बीज मेरे अनजान में मेरे भीतर किसी ने बो दिया। इस बार मिस्टर सिंह की आकृति-प्रकृति एक दूसरे ही रूप में मेरे सामने आई। उस दिन मैं बड़े कौतूहल से उन्हें देखती रही; हालाँकि मैंने बड़े संकोच के साथ उनसे बातें कीं। तीसरी बार मैं अधिक ढीठ हो उठी और चौथी बार मेरी वह ढिठाई चरम सीमा को पहुँच गई, मैं जान गई थी कि तुम यही चाहते हो, सो वही हुआ। पर, तब से तुम्हारे प्रति मेरे मन में घृणा का भाव किस कदर उमड़ उठा, इसका अनुमान तुम शायद इस समय भी लगाने में असमर्थ होगे, क्योंकि तुम केवल अर्थ और उसमें भी निपट स्वार्थ को छोड़ कर और किसी भी विषय की सूक्ष्मता को समझने की बुद्धि नहीं रखते। नारी-हृदय की सूक्ष्मतम मनोवृत्तियों के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है! आरम्भ से तुम्हारी एक मात्र महत्वाकांक्षा रही है किसी भी उपाय से रुपया बटोरना। तुम यह चाहते रहे हो कि एक निज का बंगला हो, जो बाहर-भीतर सुन्दर रूप से सजा हो, एक कार हो, बैंक में एक अच्छी-खासी मोटी रकम जमा हो, एक ऐसी फैशनेबुल जोरू हो, जिसके माध्यम से तुम्हे अर्थ और सामाजिक प्रतिष्ठा दोनों साथ साथ प्राप्त होते रहें। इस चरम लक्ष्य को सामने

रख कर तुमने एक हिसाबी बनिये की तरह फूँक-फूँक कर, सोच-समझकर, एक एक कदम आगे बढ़ाया है। मुझसे तुमने जो बात की है, वह केवल इसलिये कि मिस्टर सिंह और उन्हीं के समान दूसरे प्रतिष्ठित सरकारी अफ़सरों के हाथ मुझे सौंपकर अपना पद बढ़ा सको।'

राजेन्द्र के मुँह का रंग एक बार भय से एकदम फ़ीका पड़ जाता था और दूसरी बार क्रोध से तमतमा उठता था। मालिनी की अन्तिम बात सुनकर वह प्रचण्ड क्रोध से झल्ला उठा और पासवाली मेज़ पर ज़ोर से हाथ पटक कर भैरव स्वर में बोल उठा 'तुम झूठ कहती हो! झूठ कहती हो! झूठ कहती हो!!!' इसके आगे वह कुछ नहीं कह सका।

मालिनी ने अत्यन्त दृढ़ता के साथ कहा 'मैं अक्षर-अक्षर सच कह रही हूँ। पचास रूपल्ली के एक साधारण क्लर्क की हैसियत से तुम जो आज केवल दस वर्षों के भीतर पाँच सौ रुपये तनख्वाह पाने वाले अफ़सर बने बैठे हो, यह केवल मेरी ही बदौलत। मिस्टर सिंह ने, तथा और दो-एक प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने; वे कौन हैं, यह बात तुम से छिपी नहीं है, तुम्हारी तरक्की के लिये जो कोशिशें की हैं, उन्हें क्या तुम सचमुच भूल गए हो? नहीं, यह नहीं हो सकता। तुम हर्गिज़ नहीं भूल सकते। क्योंकि तुमने अपने घृणित स्वार्थ को ध्यान में रखते हुए जान बूझ कर मुझे उन लोगों के हाथ......

'झूठ! झूठ!! सरासर झूठ है!!!-राजेन्द्र ने मेज़ पर फिर

एक बार हाथ पटकते हुए कहा। पर इस बार के पटकने में ज़ोर कुछ कम हो गया था। पता नहीं क्यों।

'तुम झूठ कहकर एक ज्वलन्त सत्य को उड़ा देना चाहोगे और मैं मान लूँगी ? खूब ! मुझे सबसे बड़ा आश्चर्य यह सोचकर होता है कि कोई आदमी इस हद तक नपुंसक कैसे हो सकता है ! यह जानते हुए भी कि तुम्हारी स्त्री दूसरे पुरुषों के साथ घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित किए हुए है, तुम्हारे मन में कभी ईर्ष्या का भाव लेशमात्र को उत्पन्न नहीं हुआ ! अरे भले आदमी, कभी एक बार भी तो तुमने यह सोचा होता कि जिस पुरुष से तुम्हारी पत्नी की घनिष्ठता है, वह अपने मन में तुम्हें कितना बड़ा गधा समझता होगा ! आर्थिक उन्नति की भावना के कारण तुमने नीति को तिलाञ्जलि दी, प्रतिष्ठा खोई और अपने पुरुषत्व का दिवाला निकल जाने की घोषणा सारे समाज में कर दी ! और सबसे बड़ी दिल्लगी की बात यह कि सब कुछ जानते हुए भी तुमने अपनी पत्नी के साथ दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित रक्खा ! जब तक तुम्हारे अफ़-सरों के साथ मेरा सम्बन्ध बना रहा, तब तक तुम्हारी कुल की मर्यादा और सामाजिक प्रतिष्ठा की सारी भावनाएँ न जाने किस गधे के सिर के सींगों की तरह ग़ायब हो गई थीं ; आज जब एक सरल स्वभाव, सहृदय पर ग़रीब युवक से मेरा परिचय (केवल परिचय) हुआ है, तो तुम्हारी इतने दिनों तक की दबी हुई सारी नपुंसक ईर्ष्या न जाने कहाँ से उमड़ उठी है ! सुरेन्द्र से जब मैं मिलती हूँ और आन्तरिक स्नेह और करुणा से दो-चार बातें

करती हूँ, तो तुम उचक-उचक उठते हो और आजकल तमाम दिन और तमाम रात इस एक बात को लेकर मुझे परेशान करते हुए नारी के सतीत्व के सम्बन्ध में लेक्चर पर लेक्चर बघारते चले जाते हो ! यह सब केवल इस कारण कि जिस नये व्यक्ति से मेरा परिचय हुआ है, उससे कोई आर्थिक लाभ तुम्हें नहीं हो सकता ! कहाँ गई थी तुम्हारी वह ईर्षा जब जौहरी का वह लड़का पाँच हज़ार रुपये के जड़ाऊ कंगन तुम्हारे सामने बिना दाम के मुझे दे गया था और दूसरे ही दिन तुम्हारी सम्मति से मुझे अपनी 'फ़िटन' में सैर कराने ले गया था ? कहाँ गई थी तुम्हारी वह ईर्षा जब मैं मिस्टर सिंह की कार में रात के दो-दो, ढाई ढाई बजे घर वापस आती थी ? तब तो तुम सब कुछ जानते हुए भी बड़े प्यार और दुलार से मुझसे बातें किया करते थे !"

इतने में प्रायः पाँच साल के एक सुन्दर बच्चे ने दाई के साथ भीतर प्रवेश किया। इससे आधे क्षण के लिये शायद मालिनी की वाग्धारा की प्रगति में कुछ रुकावट पड़ी। पर तत्काल उसकी उत्ते-जित अवस्था ने चरम रूप धारण कर लिया। उसकी आँखें पूर्ण उन्मादग्रस्त व्यक्ति की आँखों की तरह अस्वाभाविक रूप से चमक उठीं। तमाम चेहरा दहकते हुए अंगारों से प्रकाश की तरह लाल हो उठा और दाई की उपस्थिति का तनिक भी ख़याल न कर वह बच्चे की ओर ऊँगली से संकेत कर के प्रायः चीखती हुई बोल उठी —कहाँ गई थी तुम्हारी वह ईर्षा जब तुम जानते थे कि यह बच्चा तुम्हारा नहीं, बल्कि किसी दूसरे व्यक्ति का है, जिसके साथ तुम

चाहते थे कि मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाय ?'

यह कहती हुई वह उसी निपट पागल की अवस्था में उठ खड़ी हुई ।

राजेन्द्र भी उचक कर उठ खड़ा हुआ और एक विचित्र अस्वाभाविक स्वर में गुहार मारता हुआ बोला—मालिनी ! मालिनी ! तुम यह क्या कहती हो ? क्या सचमुच...क्या सचमुच... उसने पलक भर के लिये एक बार बच्चे की ओर—जो भौंचक्का-सा खड़ा था—देखा, फिर तत्काल उसकी ओर से आँख फेर कर मालिनी के प्रचण्ड चण्डी रूप की ओर सहमता, सकुचाता हुआ देखने लगा । उसके बाद बोला—मैं कसम खाकर कहता हूँ, मुझे इन सब बातों का कुछ भी पता आज तक नहीं था । तुम्हारे इतना कहने पर भी मैं इन सब बातों को झूठ—गलत समझता हूँ; क्योंकि मुझे तुम्हारे चरित्र पर पूरा विश्वास आरम्भ से ही रहा है । यही कारण था कि मैंने निश्चिन्त होकर बिना किसी बात की आशंका के तुम्हें अपने परिचित पुरुषों के साथ हेलमेल बढ़ाने दिया और कभी किसी भी बात का सन्देह मेरे मन में पैदा नहीं हुआ । आज न मालूम तुमको क्या हो गया है, जो तुम इस तरह की बेसिर पैर की बातें कर रही हो !'

उसके चेहरे से हवाइयाँ उड़ रही थीं और उसके मुख की अभिव्यक्ति इस क़दर दयनीय हो उठी थी कि मालूम होता था जैसे वह अब रोने ही को है ! मालिनी को इस बात से तनिक भी दया नहीं आई; बल्कि एक घोर प्रतिहिंसा पूर्ण प्रसन्नता का

भाव उसके मुख पर दमक रहा था। उसने अत्यन्त स्थिर; किन्तु कठोर स्वर में कहा—'मैं क़तई बेसिर-पैर की बात नहीं कर रही हूँ। बल्कि घोर यथार्थ, सत्य तुम्हारे आगे प्रकट कर रही हूँ! तुमने अपनी कुलीनता के दामों पर मुझे ख़रीदा और पाँच सौ रुपए की नौकरी के मोल मुझे बेचा। अपने हीन स्वार्थ के लिए तुमने मुझे वेश्या बनाकर छोड़ा है। छुटपन से मैं इस बात का स्वप्न देखा करती थी कि किस प्रकार मैं अपने पति का एकान्त प्रेम पा, पति के जीवन की सच्ची संगिनी बनकर, प्यारे-प्यारे बच्चों की माँ बनूँगी, सुख, सन्तोष तथा पवित्र गृहस्थ-जीवन पाऊँगी। कम्पनी बाग़ वाली उस घटना ने—जिसे आज दस वर्ष बीत चुके हैं—मेरे उन सारे स्वप्नों को चकनाचूर कर दिया। इन दस वर्षों के भीतर मेरी बाहरी आत्मा ने राग-रंग से भरा मुक्त जीवन बिताया है, संदेह नहीं; पर मेरे भीतर दबी नारी की आत्मा ने जल-जल कर श्मशान बनते हुए तुम्हें जो अभिशाप दिया है, उसका हज़ारवाँ अंश भी अगर मैं ठीक से तुम्हारे आगे, और तुम···'

इतने में नौकर ने आ कर ख़बर दी कि सुरेन्द्रनाथ आए हैं। राजेन्द्र इतनी देर तक मुर्दे की तरह निष्प्राण और प्रेतात्मा की तरह निःसत्व चेहरा लिये खड़ा था। सुरेन्द्रनाथ का नाम सुनते ही वह वह सजीव हो उठा। उसने नौकर से कहा—'सुरेन्द्र बाबू से कह दो कि आज बीबी जी की तबियत ख़राब है, वह नहीं मिल सकतीं।' नौकर हुकम बजा लाने के लिये वापस

आने ही को था कि मालिनी ने उसे टोकते हुए कहा—'ठहरो! सुरेन्द्र बाबू से कहो कि बीबी जी आ रही हैं।'

यह कह कर वह बड़े शीशे के पास चली गई और सज-सँवर कर कँघी-चोटी करने के बाद मचमचाती हुई बाहर चली गई। राजेन्द्र बेवकूफ़ों की तरह देखता रह गया!

अपतीक

नये मुहल्ले में आये हम लोगों को प्रायः एक महीना हो गया था। पतिदेव मिलनसार प्रकृति के आदमी थे, इसलिये कुछ ही दिनों के भीतर उन्होंने पड़ोस के प्रायः सभी प्रतिष्ठित सज्जनों के साथ मित्रता स्थापित कर ली थी। पर मेरा स्वभाव अत्यन्त संकोचशील होने के कारण मैं अभी तक बहुत कम स्त्रियों से हेलमेल बढ़ाने पाई थी। किन्तु मैंने इस बात पर गौर किया है कि मेरी प्रकृति की इस सङ्कोचशीलता के कारण ही स्त्रियाँ (पुरुषों के सम्बन्ध में मैं निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकती) मेरे प्रति आकृष्ट होती हैं; और मेरी विशेष इच्छा न होने पर भी मेरे साथ घनिष्ठता बढ़ाने के लिये उत्सुक रहती हैं। इस नये पड़ोस में भी मैंने यही बात पाई। मैं स्पष्ट देख रही थी कि स्त्रियाँ मेरा परिचय प्राप्त करने के लिये उत्सुक थीं, पर मेरी अत्यधिक रुखाई देखकर वे सहम जाती थीं। फिर भी दो चार ढीठ युवतियाँ

सहम करके भी स्वयं मेरे यहाँ चली आईं और एक ही दिन के परिचय से उन्होंने मेरे साथ घनिष्ठता जोड़ ली।

इन युवतियों में एक का नाम उमा था। वह जाति की वैश्य थी। बड़ी हँसमुख, चञ्चल और मिलनसार थी। प्रथम दर्शन से ही मैं उसके प्रति आकर्षित हो गयी। तब से वह नित्य मेरे यहाँ आने लगी। दिन को पतिदेव जब आफ़िस चले जाते और मेरा नन्हा सो जाता तो दिन का अवकाशमय समय उसके साथ गपशप में अच्छी तरह कट जाता। उसकी आयु प्रायः उन्नीस या बीस वर्ष की होगी। पर अभी तक वह निस्सन्तान थी, इसलिये शायद उसे मेरे यहाँ आने की स्वाधीनता प्राप्त थी। उमा की बातों से मुझे मालूम हुआ कि उसके ससुर जौनपुरी इत्र का व्यापार करते हैं। उन लोगों का अपना निजी मकान था, पर दो चार किरायेदार भी उस मकान में रहते थे। अपने प्रत्येक किरायेदार की दिनचर्या के सम्बन्ध में वह बहुत से किस्से मुझे सुनाती थी और उनकी नकल करके मुझे हँसाती थी। पर उनमें से विशेष एक किरायेदार के सम्बन्ध में वह जिस प्रकार की बातें मुझे सुनाती थी, उससे उस व्यक्ति की असाधारण प्रकृति का परिचय मिलता था। उमा यद्यपि मुझे हँसाने के लिये उसकी भाव-भङ्गी की भी नकल उतारती थी, तथापि मैं स्पष्ट देखती थी कि उसकी नक़ल से उस व्यक्ति के गम्भीर स्वभाव का महत्त्व झलकता था।

उमा मेरे यहाँ इतने दिन आचुकी थी, पर मैं उसके यहाँ

एक दिन भी नहीं गई थी। उमा ने भी इस बात के लिये विशेष ज़ोर नहीं दिया था। शायद इसका कारण यह हो कि यहाँ सास और ननद के बीच में उसे हँसी-खुशी के लिये स्वतंत्रता नहीं मिलती थी। कुछ भी हो, एक दिन किसी उत्सव के अवसर पर उसने मुझे निमन्त्रण दिया। उसके यहाँ आकर मैंने देखा कि मकान बड़ा है। अपनी सास, ननद, देवरानियाँ, जेठानियाँ सबसे उसने मेरा परिचय कराया। घर मे बाल-बच्चों की संख्या भी यथेष्ट थी। दिन भर मैं उन्हीं लोगों के साथ बैठी रही। जब सूर्यास्त होने लगा तो मैंने वापस चलने का विचार किया। उमा ने कहा—वाह, अभी तो हमारे किरायेदारों से तुम्हारा परिचय हुआ ही नहीं. अभी कैसे जा सकती हो? यह कह कर वह मुझे मकान के उस हिस्से में ले गई जहाँ किरायेदार रहते थे।

तीन किरायेदार सपरिवार रहते थे। उन लोगों की स्त्रियों से परिचय और कुछ देर तक वार्तालाप हो जाने के बाद वह मुझे कोने वाले कमरे के पास ले गयी। कमरे में ताला पड़ा हुआ था, पर खिड़की खुली थी, जिस से होकर भीतर का दृश्य पूर्णतः देखा जा सकता था। मैं ने देखा सब चीज़ें इधर-उधर बेतरतीब रखी हुई अस्त-व्यस्त अवस्था में जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी हैं, पुस्तकों की संख्या ही अधिक देखने में आती थी, पलंग पर, कुर्सी के ऊपर, नीचे फ़र्श पर, सर्वत्र पुस्तकें ही पुस्तकें पड़ी हुई थीं, एक कोने में एक सूटकेस खुला हुआ रखा था। एक स्थान पर मैले कपड़ों का ढेर लगा हुआ था। दो-तीन मैले रुमाल भी इधर-उधर पड़े

थे। पलँग की चादर यद्यपि बहुत मैली नहीं थी, तथापि उसे देखने से ऐसा मालूम होता था, जैसे बहुत दिनों से बिस्तर झाड़ कर बिछाने का अवकाश ही किरायेदार महाशय को न मिला हो। नीचे फ़र्श पर एक शीशा दीवार के सहारे लेटा कर रखा हुआ था। न मालूम कितने दिनों से वह पोंछा नहीं गया था। तेल लगे हुये हाथों के दाग़ उसमें स्पष्ट दिखाई देते थे। उसके पास ही एक कंघी और तेल की शीशी भी पड़ी थी, और वहीं पर टुथ-पेस्ट और ब्रस भी। ताक पर भी बहुत-सी किताबें, दो-एक कपड़े, एक स्टोव, दो बोतल (सम्भवतः स्प्रिट और किरासिन तेल) और एक टी-सेट रखा था। मैंने उमा से पूछा-यहाँ "कौन साहब रहते हैं।" उस ने कहा—"यहीं तो रहते हैं तिवारी जी।" "कौन तिवारी जी चन्द्र शेखर तिवारी ?" "हाँ।" यह चन्द्रशेखर तिवारी वही थे जिनके सम्बन्ध में उमा की बातें सुन कर मैंने मन-ही-मन उनकी असाधारण प्रकृति की धारणा कर ली थी। उमा से मुझे यह भी मालूम हुआ था कि यह अविवाहित हैं, यद्यपि उनकी आयु पचीस वर्ष से अधिक हो चुकी थी। इसलिए उनके कमरे की यह दुर्गति जब मैंने देखी तो गृहस्थी के सौभाग्य से वंचित एक युवक के लिये मेरे अन्तःकरण में, न मालूम क्यों, एक क्रन्दन-सा होने लगा। जीवन में जिस व्यक्ति को कभी आँखों न देखा हो, उस के प्रति इस प्रकार की समवेदनात्मक भावुकता उपहास-योग्य है, सन्देह नहीं। पर मनुष्य के इस मन का कुछ ठिकाना नहीं है। कब क्यों और किसके लिये यह रो पड़ता है, इसका अन्दाज़

लगाना कठिन है। शायद उस समय सूर्यास्त के शान्त, करुण, विषादमय वातावरण में भी कुछ विशेषता थी। तिवारी जी के कमरे में खिड़की से हो कर अस्तगामी सूर्य की पीली किरणें एक स्निग्धच्छटा विभाषित कर रही थीं। उसे देखकर कुछ क्षण के लिए मैं वास्तविक संसार से दूर—बहुत दूर चली गयी और अपने बचपन के प्यारे दिनों की स्थिति अकारण मेरे मन में जागरित हो कर मुझे विकल करने लगी।

यहाँ पर पाठक अवश्य उकता उठेंगे और कहेंगे कि—"ये सब बेसिर-पैर की बातें हैं और शब्दाडम्बर का जाल है; एक अनजान आदमी के कमरे की अव्यवस्थित स्थिति देख कर रोना आवे, बचपन की याद आ जाय, यह सब अर्थहीन भावुकता है।" सम्भव है। पर मैं अपनी उस समय की वास्तविक स्थिति का वर्णन कर रही हूँ। उस दिन की उस पीली सन्ध्या के, बहुत दिनों के बाद, मेरे रात दिन के वैचित्र्यहीन सुख-दुःख में भूले हुए जड़हृदय को तरङ्गित कर दिया था। तिवारी जी के एक विशेष प्रकार की मूर्ति की कल्पना मैं अपने मन में करने लगी। मैं सोचने लगी कि वे एक अन्यमनस्क भावुक-प्रकृति के कवि होंगे; उनकी तेजपूर्ण आँखों से एक उदास ज्योति विकिसित होती होगी, उन की चाल में एक अजीब अल्हड़पन रहता होगा, व्यावहारिक संसार से मतलब न रखकर वह एक निराले आदर्श के संसार में विचरण करते होंगे, इसीलिए उनके कमरे की यह हालत है। मेरा अन्तःकरण कहता था कि यह उसी प्रकार के होंगे। मैंने

फिर सोचा—यदि ऐसे अन्यमनस्क, आदर्शवादी पुरुष को कोई यथार्थ में प्यारी और सब प्रकार से योग्य स्त्री मिल जाय तो उसके मन का क्या होगा ? उसकी आत्मा में कैसी भावनायें तरङ्गित होने लगेंगी ? मैं कह नहीं सकती कि क्यों मेरे मन में उस अज्ञात अप्रत्यक्ष व्यक्ति के मानसिक विचारों को जानने की उत्कृष्ट लालसा उत्पन्न हुई।

मैंने उमा से पूछा—"तिवारी जी क्या काम करते हैं ?"

उसने कहा—"इस प्रश्न का उत्तर तुम्हें इस मकान भर में कोई न दे सकेगा। वह क्या काम करते हैं, यह सब बातें किसी को नहीं मालूम। सिर्फ़ इतनी ही बात उनके सम्बन्ध में मालूम हो सकी है कि उनका ब्याह अभी तक नहीं हुआ है। क़रीब दस महीने से वह हमारे मकान में रहते हैं, पर अभी तक हम लोगों को इस बात का पता नहीं लगा है, वह किस जगह के रहने वाले हैं।"

इस रहस्यमय व्यक्ति को देखने की उत्कट लालसा मेरे मनमें समा गयी; पर इस बात की सम्भावना न देखकर मैं नन्हें को लेकर घर लौट चलने के लिये उद्यत हुई। ज्योंही बरामदे से होकर जाने लगी त्योंही सीढ़ियों से हो कर एक सुन्दर सजीले युवक को द्रुत तथा निश्चित पग से ऊपर आते देखा। मैं घूँघट काढ़ कर एक कोने में खड़ी हो गई। मुझे भी सीढ़ियाँ उतर कर नीचे जाना था। उमा ने मेरे कान में कहा—"यही हैं। आज न मालूम जल्दी कैसे आ गये!" मैंने एक बार साहस करके

घूँघट के भीतर से ही कनखियों से उन्हें देखा । वास्तव में वह देखने में सुन्दर थे। मुख में विषाद की एक करुण छाया वर्तमान थी। शरीर के कुछ दुबले थे, पर विशेष नहीं । कोट-पैण्ट पहने थे। कोई भी साधारण व्यक्ति प्रथम दृष्टिपात से ही कह सकता था कि वह किसी बड़े घराने के लड़के हैं और इस प्रकार के एकाकी जीवन के अभ्यासी नहीं हैं । वह इधर-उधर न देखकर दृष्टि नीचे की ओर किए सीधे अपने कमरे की ओर चले गए। उमा उनकी चाल की जैसी नकल किया करती थी, ठीक वही बात मैंने पाई।

मनमें एक उदास भावना लेकर उस दिन मैं घर पहुँची। पतिदेव से मैंने कहा—"आप तो कहते हैं कि पड़ोस के सब आदमियों से परिचय है, पर आज मैं उमा के यहाँ जिस आदमी को देख आयी हूँ, आपने कभी उसका नाम भी न सुना होगा।"

पतिदेव ने कहा—"ऐसा कौन आदमी है। ज़रा सुनूँ।"

"वह बड़े अजीब आदमी हैं । सुबह को बहुत जल्दी बाहर निकल जाते हैं, दिन-भर कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं; पता नहीं, रात को बड़ी देर से घर लौटते हैं । अकेले अपनी ही धुन में मस्त रहते हैं, किसी से अधिक बातें नहीं करते।"

"चन्द्र शेखर तिवारी की बात तुम कर रही हो?"

मैंने अजान-सी बनकर कहा—"हाँ, शायद यही उनका नाम है।"

उदासीनता की रूखी हँसी हँसकर पतिदेव बोले—"हूँ, उसे

तो मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ । वह शाजहाँपुर ज़िले का रहने वाला है। उसके पिता एक ख़ासे अच्छे ज़मींदार हैं । पर वह यहाँ किस लिए आया है, क्या काम करता है, यह बात मुझे भी ठीक मालूम नहीं है।"

मैंने ताना देते हुए कहा—"इसीलिए तो मैं कहती थी कि आप यह डींग मारते फिरते हैं कि मैं मुहल्ले के सब लोगों को भली भाँति जानता हूँ, पर एक ऐसा भी आदमी इस महल्ले में रहता है, जिसके सम्बन्ध में पूरी-पूरी बातें आप भी नहीं जानते।"

वह उत्तेजित हो कर बोले—"यह मालूम करना कौन-सी मुश्किल बात है। मैं कल ही बता सकता हूँ । एक ही दिन के भीतर सभी बातें ठीक-ठीक मालूम करके तुम्हें बता दूँगा । न पता लगाऊँ तो मेरा नाम—"

अपने उद्देश्य की सफलता की आशा से मुझे प्रसन्नता हुई।

दूसरे दिन पतिदेव तिवारी जी को न मालूम कहाँ से पकड़ कर अपने साथ ही हमारे मकान पर लिवा लाये । मेरे तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा। दोनों को आते देख कर मैं भीतर जा छिपी और चिक की ओट से झाँकने लगी । दोनों मर्दाने में आकर बैठ गये। तिवारी जी के बैठने के ढङ्ग से भी उनकी प्रकृति के गाम्भीर्य और आत्म-मर्यादा का भाव व्यक्त होता था। उनकी अपनी आँखों में न मालूम क्या जादू भरा था ! देख-देखकर मुझे तृप्ति नहीं होती थी।

कमरे के चारों ओर तक सरसरी निगाह फेरकर तिवारी जी

ने पूछा—"इस मकान में आप कब से हैं ?"

पतिदेव ने उत्तर दिया—"प्रायः एक महीना हो गया।"

"बस केवल एक महीना ? इतने ही समय के अन्दर आप ने इस तरफ़ इतने आदमियों से हेल-मेल बढ़ा लिया है ? आश्चर्य है ! मुझे यहाँ एक साल पूरा हुआ चाहता है, पर शायद ही मैं इस मुहल्ले में किसी को जानता होऊँ। यह कह कर 'हाः हाः' करके हँसे। उनका हँसना भी प्यारा लगता था। उनका यह हँसना यद्यपि बनावटी नहीं था तथापि मेरा अन्तःकरण कहता था कि उसके भीतर भी विषाद छिपा है।

पतिदेव ने कहा—"हम लोगों को तो आपका एकान्त-प्रिय, गम्भीर स्वभाव बड़ा रहस्यमय मालूम होता है। इस समय आप हँस रहे हैं, इसलिए आप से खुल कर बातें करने का साहस भी मुझे हो रहा है, पर जिस समय आप अपने असली रूप में होते हैं, उस समय आपके मुख का कठिन भाव देख कर लोग घबरा जाते हैं।"

तिवारी जी फिर एक बार हँस पड़े। मालूम होता था कि आज बहुत दिनों के बाद उन्हें हँसने का अवकाश मिला था। अकस्मात् मेरी चूड़ियाँ मेरी असावधानी से कुछ खुनक उठीं। चौंककर तिवारी जी ने चिक की ओर दृष्टि गिरायी। बोले—"आप यहाँ सपरिवार रहते हैं ?"

"जी हाँ।"

"ओः ! मुझे नहीं मालूम था।" उनके मुख पर फिर से

गम्भीरता आ गयी और ओठों की हँसी तिरोहित हो गयी।

कुछ देर तक दोनों चुप रहे। कुछ सोच कर पतिदेव ने पूछा—"आप चाय तो पीते ही होंगे।"

"आदी नहीं हूँ, पर परहेज़ भी नहीं है।" पतिदेव भीतर चले आये। मुझ से बोले—"जल्दी चाय तैयार करो। अजीब आदमी है, अभी तक मैं इसे कुछ समझ न पाया, न कुछ बातें ही मालूम हो सकीं। पर धीरे-धीरे सब पता लगा लूँगा, देख लेना।

मैंने स्टोव जलाकर चाय तैयार की। घर में कुछ मिठाइयाँ पहले से ही तैयार करके रखी थीं। दो रकाबियों में सजाकर रख दीं। घर में कोई नौकर नहीं था। चौका-बर्तन का काम महरी कर जाती थी। पतिदेव स्वयं चाय के प्याले और मिठाई की रकाबियाँ ले गये।

तिवारीजी ने कहा—"मेरे लिये आप ने बड़ा कष्ट किया।"

पतिदेव ने कहा—"कष्ट की कौन-सी बात है! हम लोग स्वयंसेवक हैं, सेवा ही हमारा काम है।"

तिवारीजी ज़रा चौंके। बोले—"आप क्या कांग्रेस के वालण्टियर हैं?"

पतिदेव ने मुस्कराकर कहा—"जी नहीं, परन्तु सेवा ही मेरा धर्म है। आफ़िस जाता हूँ तो साहब की सेवा करता हूँ, घर आता हूँ तो घर वाली की—"

'घरवाली' शब्द सुनते ही तिवारी जी का मुँह लज्जा से लाल

हो आया। यह स्पष्ट जान पड़ता था कि स्त्री-जाति के सम्बन्ध में अभी तक उसके मन में किशोर कुमार का भाव वर्तमान था। इस सम्बन्ध में वह अत्यन्त नीतिनिष्ठ और पवित्रतावादी जान पड़ते। मुझे ऐसा ज्ञात होता था कि स्त्री, शब्द की भनक कानों में पड़ते ही वह अपनी आत्मा को संकुचित-सा मालूम करने लगते थे। पतिदेव भी शायद उनकी प्रकृति की यह विशेषता ताड़ गये थे, सम्भवतः इसलिये उन्होंने यह प्रश्न किया—"क्या मैं यह जानने की धृष्टता कर सकता हूँ कि विवाह के विषय में आप की क्या राय है?"

तिवारी जी ने कहा—"मेरी तो राय है कि मनुष्य के जीवन में विवाह की बिल्कुल आवश्यकता ही नहीं है।"

"तो आप स्त्री-पुरुषों के बीच यथेच्छाचार के पक्षपाती हैं?"

इस प्रश्न से अत्यन्त व्यथित हो कर तिवारी जी दाँतों से जीभ काटते हुये बोले-"हरे राम! राम! आप ऐसी बात मुँह से कैसे निकालते हैं? मेरा यह आशय कदापि नहीं है। मैं कहना चाहता था कि स्त्री-पुरुष के पारस्परिक मिलन की आवश्यकता किसी भी रूप में नहीं है। स्त्रियाँ पुरुषों से एक दम अलग रह कर अपना जीवन बितायें और पुरुष स्त्रियों से अलग रह कर। दोनों के जीवन की गति स्वभाव से बिलकुल भिन्न है और होनी चाहिये।" उनके मुख में दृढ़ गाम्भीर्य का भाव वर्तमान था।

"तो आप ध्वंसवादी हैं? सृष्टि का समूल विनाश हो जाय, यही आप चाहते हैं?"

"नहीं, ध्वंसवादी नहीं हूँ। पर मेरा यह विश्वास है कि यदि स्त्री-पुरुष वास्तव में एक-दूसरे से एकदम अलग हो जायँ, किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध न रखें, तो प्रकृति सृष्टि का कोई दूसरा ही रास्ता अपने लिये निकाल लेगी। वनस्पति-जगत में जिस नियम से सृष्टि चल रही है, अथवा और कोई सुन्दर, पवित्र नया नियम अवश्य ही स्वभावतः प्रवर्तित हो जायगा।"

इस अद्भुत मन्तव्य को सुनकर पतिदेव बड़े ज़ोर से ठठाकर हँस पड़े। उनके हास्य से विचलित न हो कर तिवारी जी कहते चले गये—"इसमें हँसने की कोई बात नहीं है। यह बात अद्भुत मालूम पड़ती है, सन्देह नहीं, पर यह अस्वाभाविक नहीं है। मुझे पूरा विश्वास है कि कुछ ही लाख वर्षों के भीतर सृष्टि के विकास का नियम ही बिलकुल बदल जायगा। कुछ भी हो, मुझे संसार के मतामत से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं व्यक्तिगत रूप से सृष्टि के वर्तमाननियम के प्रति विद्रोह करना चाहता हूँ। मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि मैं विवाह कभी नहीं करूँगा। आपको शायद मालूम नहीं होगा कि मैं इसी कारण घर से भाग कर यहाँ आया हूँ। पिता जी मेरे विवाह पर ज़ोर देते थे और मेरे इनकार करने पर भी उन्हों ने एक लड़की मेरे लिये ढूँढकर सब बातें पक्की कर ली थीं विरोध का अन्य कोई उपाय न देखकर मैं भाग आया।"

इस अनोखे आदर्शवादी पुरुष के निश्चय की दृढ़ता देखकर मैं तो हैरान थी। मन-ही-मन सृष्टि-कर्ता को कोसने लगी कि ऐसा सुन्दर, सरल, निष्कपट स्वभाव जिस पुरुष का हो उसके मन में

स्त्रियों के प्रति ऐसा निष्ठुर विराग उत्पन्न कर दिया और नीच, सहृदयताहीन, कपटी पुरुषों को उसने कामुकता का दास बना दिया ! स्त्रियों का भाग्य भी कैसा निर्दयी है !

कुछ देर तक इसी प्रकार वाद-विवाद होता रहा। इस के बाद तिवारी जी चले गये। अपने जीवन में प्रथम बार आज मैंने एक अकृतिम पुरुष को खा था। मेरे मन में उसके प्रति, क्या भाव उत्पन्न हो रहा था, मैं कह नहीं सकती,—स्नेह ? घृणा ? क्रोध ? अथवा करुणा ?

एक दिन मैं अनमनी-सी हो कर छज्जे पर खड़ी थी। प्राय: चार बजे का समय होगा। पतिदेव के दफ्तर से आने का समय अभी नहीं हुआ था। अकस्मात् मैंने तिवारी जी को हमारे मकान की ओर आते देखा। कुछ ही देर बाद मुझे मालूम हो गया कि मेरा अनुमान ठीक है। तिवारी जी हमारे मकान की सीढ़ियों से हो कर भीतर आने लगे। मैं असमंजस में पड़ गयी, कि दरवाज़ा खोलूँ या न खोलूँ। सहसा मुझे एक शरारत सूझी। मैंने सोचा कि स्त्री के नाम से घबराने वाले इस पुरुष के आगे परदा करना मूर्खता है। मेरे मन में एक उत्सुकता भी उत्पन्न हो गयी। मैं देखना चाहती थी कि स्त्री-विरोधी पुरुष पर मेरे रूप का क्या प्रभाव पड़ता है। मैं जानती हूँ कि मेरी यह स्त्री-सुलभ—चञ्चलता निन्द-नीय है। अपनी यह दुर्बलता मैं स्वीकार करती हूँ। पर साथ ही मैं यह बतला देना चाहती हूँ कि मैं निष्पाप चपलता के भाव से प्रेरित हुई थी, किसी दुष्टप्रकृति से नहीं।

मैंने चुप-चाप भीतर से चटखनी खोल दी और एक कोने में खड़ी हो गयी। तिवारी जी नीचे से ही पुकारते हुये आये—"शर्मा जी! शर्मा जी! उन्हों ने किवाड़ पर धक्का दिया तो वह खुल गया। मैं नंगे सिर उनके आमने-सामने खड़ी हो गयी और फिर तत्काल सिर को साड़ी से ढँकते हुये बोली—"विराजिये!" मुझे पूरा विश्वास है कि यदि तिवारी जी के सामने वहाँ पर बाघ आकर खड़ा हो जाता तो कभी उनका मुँह भय के कारण वैसा विवर्ण न होता जैसा इस प्रकार एक युवती को अप्रत्याशित रूप से देखने पर हुआ। उनके चेहरे पर मुर्दनी छा गयी, मानो रूप का नाम न हो। मैंने कहा—"बैठिए अभी आते ही होंगे।" उनकी इच्छा बैठने की बिलकुल नहीं थी, यह मैं स्पष्ट देख रही थी, तथापि उनकी मानसिक स्थिति उस समय ऐसी भ्रान्त हो गयी थी कि इच्छा न होने पर भी एक कुर्सी पकड़ कर बैठ गये, और मेरी नज़र बचाने के लिये, दीवार पर जो दो तीन चित्र टँगे थे, उन्हें देखने लगे।

मैं किसी तरह उनका संकोच और भय दूर करना चाहती थी। मैंने कहा—"आप यहाँ शायद अकेले रहते हैं? कोई दूसरा आदमी आप के साथ नहीं है?"

उन्होंने मेरी ओर देख कर रुखाई से उत्तर दिया "जी नहीं।"

इस रुखाई की परवा न कर मैंने शान्त स्वर में कहा—"आप के कमरे की कैसी हालत उस दिन मैंने देखी उससे यही मालूम होता था कि आप बड़े कष्ट में रहते हैं। खाने-पीने का इन्तज़ाम

कहाँ कर रखा है ?" मेरे कण्ठ-स्वर में स्वाभाविकता थी, और मन में समवेदना होने से शायद वह बाहर भी फूट निकली थी। एक अपरिचित स्त्री को इस प्रकार समवेदना प्रकट करते देख कर उन्हें आश्चर्य हो रहा था। इस बार उन्होंने शायद मेरे मन का यथार्थ भाव जानने के लिये स्थिर दृष्टि से मेरी ओर देखा। अपेक्षाकृत नम्रता से बोले "कोई ठीक प्रबन्ध नहीं है, कभी बाज़ार में खा लेता हूँ, कभी सिर्फ़ दूध पी कर रह जाता हूँ, कभी दूध भी नहीं पीता।" यह कह कर वह कुछ मुस्कराने की चेष्टा करने लगे। पर इस मुस्कान मे कैसी वेदना छिपी थी। मुझसे वह वेदना छिपी न रह सकी।

मैंने आन्तरिक व्यथा से कहा—"आप अपने शरीर के प्रति यह घोर अन्याय कर रहे हैं। इस प्रकार की लापरवाही से आप का स्वास्थ्य कुछ ही दिनों में बिगड़ जायगा।"

"पर क्या किया जाय ! मै स्वयं अपने हाथ से खाना नहीं बना सकता, वह कला कभी सीखी नहीं। बाज़ार का खाना रोज़ हजम होता नहीं--"

मैंने कहा—"बज़ार का खाना खाने की जरूरत ही क्या है ! हमलोगों का छुआ खाने में अगर आप को कोई एतराज़ न हो तो मै आप से पूछना चाहती हूँ कि आप नित्य सुबह शाम हमारे यहाँ आकर खाना खा जाया करें।"

"आप ? आप क्यों मेरे लिये कष्ट करने लगीं ?" यह कह कर वह आश्चर्य से मेरी ओर देखने लगे। उनके भाव से यह मालूम

होता था कि किसी स्त्री में इस प्रकार की उदारता सम्भव होने की आशा वह नहीं करते थे। मैंने कहा—"इस में कष्ट की क्या बात है! सेवा-भाव तो स्त्री—जाति का स्वाभाविक गुण है।"

तिवारी जी की आँखों में आश्चर्य और कौतूहल के भाव एक साथ भूला करते थे। कुछ देर तक स्तब्ध रह कर उन्होंने मुझ से पूछा-"आप सच कहती हैं? क्या वास्तव में सेवा-भाव स्त्री-जाति का स्वाभाविक गुण है।"

मैंने समवेदना के स्वर में, बिना किसी लक्ष्य के, कहा—"मालूम होता है, आप को अभी तक अपने जीवन में किसी वास्तविक स्त्री से काम नहीं पड़ा है। विवाह के सम्बन्ध में उस रोज़ आपने जो विचार प्रगट किये थे [मैं चिक की आड़ से सब बातें सुन रही थी] उनसे भी स्त्रियों के प्रति आप की घृणा का परिचय मिलता था। अगर आप की स्त्री होतीं तो आप के विचार भी बदल जाते और आपकी यह दशा भी न होती, जैसी मैं उस दिन आपके कमरे में देख आई थी। आप के जीवन में सर्वत्र शृंखला, नियम और सामञ्जस्य आजाता। पर आप अपनी हठ पर अड़े हैं।"

मेरी बातें सुनते-सुनते उनकी आँखों में एक अपूर्व रस छल-कने लगा था। वह कैसा पवित्र और साथ ही कैसा मधुर था!

वह बोले—"यह आवश्यक नहीं कि जीवन में शृङ्खला ही रहे। वास्तविक महत्ता विशृङ्खलता में है।"

मैंने मुसकरा कर कहा—"आप बड़े हठी हैं, तर्क में आप से

कोई जीत नहीं सकता !"

वह हँस पड़े। मुझे इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई कि मैंने सङ्कोच और संशय के भाव इनके मन से हटा दिये हैं ।

मैंने कहा—"आप का स्वभाव ऐसा कोमल है, फिर भी आप स्त्रियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, यह बड़े आश्चर्य की बात है !"

वह बोले—"मैं स्त्रियों को घृणा की दृष्टि से नहीं देखता, पर कहता हूँ कि वे मुझसे अलग रहें और मैं भी उनसे अलग रह कर अपना काम करूं—क्यों कि उनके जीवन की गति बिल-कुल दूसरी है, जिससे मेरा कोई सरोकार नहीं।"

"मेरी उपस्थिति में अवश्य ही आप को कष्ट हो रहा होगा, लाचारी है !" वह उत्तर में केवल "नहीं, नहीं" कह कर रह गये।

कुछ देर बाद पतिदेव दफ़्तर से वापस आये। मैं भीतर चली गयी। चाय-वाय पीकर कुछ देर तक गप शप करके जब तिवारी जी चले गये तो मैंने पतिदेव से उनके साथ अपने वार्ता-लाप का पूरा ब्योरा कह सुनाया। मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि पतिदेव ने इस बात को उसी दृष्टि से लिया जिस दृष्टि से मैं प्रेरित हुई थी। हम पर नाराज़ होने के बजाय उन्होंने इसे अच्छा विनोद समझा और मेरी धृष्टता पर खूब हँसे। वह भी तिवारी जी को बहुत-कुछ पहचान गये थे। मैं ने पतिदेव से आग्रह किया कि जिस तरह से भी हो तिवारी जी भोजन हमारे ही यहाँ करने को राजी हों, इसका उपाय करें।

पतिदेव से मालूम हुआ कि तिवारी जी किसी तरह राज़ी न हुए। पर एक दिन रविवार को उन्हें आख़िर अपने साथ घसीट ही लाये। मैंने बड़ी मेहनत से खाना बनाया था। अपना पाक-शास्त्र-सम्बन्धी सारा ज्ञान ख़तम कर डाला था। तिवारी जी ने बड़ी प्रशंसा की।

उस दिन से वह अक्सर हमारे यहाँ भोजन कर जाते, पतिदेव के साथ आते और उन्हीं के साथ चले जाते थे, इस लिये इच्छा होने पर भी मैं उन से बातें न कर पाती थी। पर्दे का संस्कार अभी तक मेरे मन से पूरी तरह हटने नहीं पाया था, यद्यपि पतिदेव इसमें बड़े उदार थे।

एक दिन तिवारी जी खाना खाने आये थे, पर खाया नहीं। कारण यह था कि उनकी तबीयत पहले से ही कुछ खराब थी, हमारे वह अनिश्चितावस्था में आये थे आते ही बुखार बढ़ने लगा; पतिदेव ने उन के लिये मर्दाने में एक चारपाई लगा दी और वहीं आराम करने के लिये अनुरोध किया। ज्वर और सिर-दर्द के कारण वह थकित हो रहे थे, इसलिये बिना एतराज़ लेट गये। पतिदेव के दफ्तर चले जाने पर मैं ने देखा कि उन का बुखार तेजी से बढ़ता जाता था। मैं ने थर्मामीटर लाकर उन्हें दिया। १०३ डिग्री बुखार था। उन का चेहरा तमतमाया हुआ और आँखों में पानी भरा हुआ था। उन्हों ने मुझ से कहा कि इनफ्लुएञ्जा के चिह्न मालूम होते हैं। मैं ने जोशादा बना कर उन्हें दिया और उन्हीं के पास बैठ कर पंखा झलने लगी। जोशादा पीकर वह चुप चाप

लेटे रहे। बीच में कभी कभी-दबी हुई आवाज़ में कराह उठते, पर तत्काल चुप हो जाते। पूछने से मालूम हुआ कि सिर-दर्द से अधिक कष्ट हो रहा है। अमृताञ्जन की एक शीशी मेरे पास रखी पड़ी थी। उसे उठा कर ले आयी और अपने ही हाथों से मैं ने उसे उनके माथे पर लगाया। तीन-चार बार उन्हें जोशादा पिलाया, चिन्ता के कारण कई बार उन से थर्मामीटर लगाने की जिद की। उन्हें बुखार वैसा ही रहा, दूसरे दिन भी वही हाल रहा। पतिदेव एक डाक्टर को बुला लाये थे, पर डाक्टर की दवा पीने से तिवारी जी ने एक दम इनकार कर दिया। तीसरे दिन बुखार कुछ कम हुआ और चौथे दिन एक दम नहीं रहा। मैं यथा-शक्ति उन की सेवा करती रही। केवल तीन दिन के ज्वर से उन की यह हालत हो गई थी, मुँह से आवाज़ भी ठीक तरह से न निकलती थी। चौथे दिन मैं ने एक गिलास में दूध ला कर उन्हें दिया। वह पीने से इनकार करने लगे। बोले, कि इच्छा नहीं है। मैं ने बहुत हठ की और कहा "अगर आप दूध न पीयेंगे तो मैं भी खाना नहीं खाऊँगी।" अतएव उन्हें पीना पड़ा। तीन-चार दिन के भीतर ही वह भले-चंगे हो गये। उन की कमजोरी की हालत में मैं उन के पास बैठी रहती, इधर-उधर की बातों से उन का जी बहलाने की कोशिश करती, यथाशक्ति उन्हें किसी बात का कष्ट न होने देती। कुछ ही दिनों के भीतर मैं उन से ऐसा हिल-मिल गयी थी मानो उन से मेरा वर्षों का परिचय हो। उन पर मेरा ऐसा प्रभाव जम गया कि मेरे किसी भी अनुरोध को टालने का साहस उन में न रहा। जैसा मैं कहती

बैठा करते, बड़ी दिलचस्पी से मेरी बातें सुनते और बड़ी नम्रता से प्रत्येक बात का उत्तर देते । तथापि बीच-बीच में वह ऐसे अन्य-मनस्क दिखाई देते कि उस समय उन की विचारमान आँखों का भाव देख कर मैं घबरा जाती । बीमारी के समय से वह मेरे अनुरोध से हमारे ही यहाँ रहने लगे थे । उन की सेवा से मैं अपने को कृतार्थ समझ रही थी । अक्सर हम दोनों में किसी सामाजिक अथवा धार्मिक विषय पर बड़ी देर तक वाद-विवाद होता रहता ।

एक दिन मैं नन्हे को गोद में ले कर उसे सुलाने की चेष्टा कर रही थी । अचानक तिवारी जी ने भीतर प्रवेश किया और दोनों हाथों से मेरे पाँव छूकर मुझे विस्मय-चकित कर के बोले—"मैं आन्तरिक श्रद्धा से आप को प्रणाम करता हूँ, मुझ से जो कुछ भूल-चूक, जो कुछ असभ्यता और जो कुछ त्रुटि आज तक हुई हो तो उसे क्षमा कीजियेगा ।"

मैं कुछ देर तक मूढ़वत् उनकी ओर ताकती रही । कुछ देर बाद मैं ने कहा—"यह आप क्या कहते हैं ! किस असभ्यता, किस त्रुटि की बात आप कह रहे हैं ? मैं कुछ समझी नहीं ! आप सचमुच बड़े अजीब आदमी हैं !"

पर मेरी बात का कोई उत्तर न दे कर उन्हों ने फिर एक बार मुझे हाथ जोड़े और इस के बाद सीधे बाहर को चल दिये । मेरे आश्चर्य का ठिकाना न था । उस दिन रात को भी वह न लौटे दूसरे दिन भी नहीं आये, तीसरे दिन भी नहीं दिखायी दिये । पता लगाने से मालूम हुआ कि उमा के ससुराल वालों का पूरा किराया

उन्हों ने पहले ही चुका दिया था, तब से वहाँ भी वह नहीं दिखायी दिये। मैं हैरत में थी।

अन्त को, उन के जाने के प्रायः एक सप्ताह बाद, डाकिया एक चिट्ठी मुझे दे गया। पत्र पर एक अपरिचित हस्तलिपि में पतिदेव का नाम और पता लिखा हुआ था। पतिदेव की अनुपस्थिति में मुझे उन के सब पत्रों को खोल कर पढ़ने की आज्ञा थी। मुझे जो कौतूहल हुआ तो पत्र खोल कर पढ़ने लगी। तिवारी जी का पत्र था। पत्र में लिखा थाः—

"प्रिय शर्मा जी,

जाते समय आप से मिलने न पाया। आशा है, आप अवश्य सस्नेह क्षमा करेंगे। मेरे आकस्मिक प्रस्थान से आप को अवश्य ही आश्चर्य हुआ होगा और बहन जी ने मेरी बीमारी की हालत में मेरी जो सेवा (इसे 'सेवा' कहते लज्जा मालूम होती है, उन के स्नेह के लिये क्या शब्द काम में लाया जाय ?) की है, उस ने मेरे विचारों को जड़ से हिला दिया है। बीमारी और दुर्बलता के हालत में मनुष्य भावुक हो जाता है और तिस पर भी यदि किसी स्त्री का वास्तविक स्नेह प्राप्त हो तो कठिन से कठिन स्वभाव वाले पुरुष की कठोरता मोम की तरह पिघल जाती है, इस बात का अनुभव मुझे पहली बार आप के यहाँ हुआ। स्त्री-जाति के सम्बन्ध में मेरी जो धारणा थी, बहन जी के स्निग्ध मातृ-हृदय ने अपनी स्नेहार्द्र करुणा से उसे मिटा दिया। मैं अपने जीवन में सदा मातृ-स्नेह से वञ्चित रहा हूँ। मेरे पैदा होने के एक वर्ष बाद ही मेरी

माता का देहान्त हो चुका था। मेरी विमाता वर्तमान हैं और उन के सम्बन्ध में मुझे कोई शिकायत भी नहीं करनी है, तथापि आपके यहाँ एक दम नवीन अनुभव प्राप्त हुआ, यह कहने में मुझे सङ्कोच नहीं है। मैं ने देखा कि बहन जी की स्नेह-धारा में मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा बहने लगी है और भावुकता बढ़ती जाती है। इस दुर्बलता से मुक्ति पाने के लिये मैं भाग आया हूँ। विवाह के सम्बन्ध में मेरे विचार बदल गये हैं। सन्देह नहीं, तथापि मैं ने निश्चय कर लिया है कि जब तक मुझे कोई ऐसी स्त्री न मिले जिसके हृदय में वही उदारता, जिस की आँखों में वही स्निग्धमाधुर्य, जिस की वाणी में सरलता, जिस की गति में मृदु-मन्थर गाम्भीर्य्य न हो, जैसा बहन जी में मैं ने पाया था, तब तक कभी विवाह न करूँगा। मैं जानता हूँ कि इस जन्म में ऐसी दूसरी स्त्री का मिलना सम्भव नहीं है। खैर! आशा है आप सकुशल होंगे। बहन जी से मेरा प्रणाम कहियेगा। नन्हे को प्यार।

आपका
चन्द्रशेखर तिवारी।

मैं ने पत्र तीन-चार बार पढ़ा, पर फिर कहीं न कहीं अर्थ की अस्पष्टता रही जाती थी, यद्यपि अधिकांश बातें बिलकुल स्पष्ट और सरल थीं। यद्यपि पत्र आपत्तिजनक नहीं था, तथापि मैं नहीं चाहती थी कि इसे पतिदेव पढ़ें। इस लिये मैं ने एक बार उसे भावुकता-वश सिर माथे रख कर फाड़ कर फेंक दिया।

तब से तिवारी जी को मैं ने कभी नहीं देखा, पर आज भी उन की याद में कभी-कभी रो लेती हूँ।

—:o:—

किड्नैप्ड

बाम्बे मेल के छूटने का समय हो गया था। पहले दर्जे के एक डिब्बे के बाहर एक फैशनेबुल हिन्दुस्तानी महिला खड़ी थी, जिसे आठ-दस नवयुवक घेरे हुए खड़े थे। ग़ौर से देखने पर महिला विशेष सुन्दरी नहीं जान पड़ती थी, पर उसके पोशाक-पहनावे की तड़क-भड़क, पौडर की चमक, लिपिस्टिक की रंगीनी आदि में एक ऐसी विशेषता थी जो प्लेटफ़ार्म पर टहलने वाली जनता का ध्यान बरबस अपनी ओर खींच लेती थी। जिस नवयुवक से वह मंद मधुर मुस्कराती हुई बातें कर रही थी उसके मुख पर पुलक-हर्ष का एक प्रदीप्त भाव झलक रहा था और उसकी आँखें एक अनोखे भाव की रस-विह्वलता से चमक रही थीं। दूसरे नव-युवकों के चेहरे भी एक निराली प्रसन्नता के कारण तमतमाए हुए से दिखाई देते थे।

दो युवक इंटरक्लास के वेटिंगरूम के दरवाज़े के पास स

वह दृश्य देख रहे थे। उनमें से एक गहरे नीले रंग की 'सर्ज' का सूट और नीले ही रंग की 'टाइ' पहने था और दूसरा कश्मीरी पट्टू का बना हुआ जवाहर-जाकट, मटमैले रंग का ऊनी कुर्ता, खद्दर की किश्तीनुमा टोपी, और खद्दर की ही धोती पहने था, और ऊपर से एक सफ़ेद चद्दरा ओढ़े था। सूटधारी युवक की अवस्था प्रायः ३० साल की होगी, और खद्दर धारी युवक उससे दो एक वर्ष बड़ा दिखाई देता था। सूटधारी युवक बड़े गौर से फ़ैशनेबुल महिला के प्रत्येक हाव-भाव पर ध्यान दे रहा था। उसके मुख पर एक अजीब कौतूहलपूर्ण, घृणाभरी और उदास-सी मुसकान छाई हुई थी।

खद्दरधारी युवक ने पूछा "आप कुछ अनुमान लगा सकते हैं, यह महिला कौन है ?"

सूटधारी युवक ने महिला की ओर से आँखें हटाए बिना ही कहा, "जाहिर है कि वह एक्ट्रेस है। कुछ दिनों के लिये इस ओर सैर के इरादे से चली आई होगी, अब बम्बई को वापस चली जा रही है।"

"ओह, समझा !" कहकर खद्दरधारी युवक पहले से अधिक उत्सुकता से रमणी की ओर देखने लगा। उन लोगों से कुछ दूर हट कर एक तीसरा युवक खड़ा था। वह भी बड़े ध्यान से महिला की ओर देख रहा था। उसे एक भूली हुई बात याद आई, और उसने अपने कोट की भीतरी जेब से एक छोटा-सा पाकिटबुक निकाला। उसके बाद बिना किसी का लक्ष्य किए वह बोला "यह

निश्चय ही कोई मशहूर एक्ट्रेस है। उसका ऑटोग्राफ लेना चाहिए" यह कह कर वह उस ओर चला गया जहाँ नवयुवक गण महिला को घेर कर खड़े थे।

इतने में गार्ड ने ज़ोर से सीटी बजाई। महिला कम्पार्टमेंट के भीतर चली गई। इंजन ने भी सीटी दी और उसके बाद भक् भक् करके गाड़ी धीर गति से चलने लगी। महिला परम प्रेम-भाव से मुसकराती हुई नवयुवकों की ओर एक नीले रंग का रेशमी रूमाल हिलाती जाती थी, और नवयुवक वृन्द भी वेदना मिश्रित पुलकित भाव से उसकी ओर रूमाल हिला कर उसे बिदाई दे रहे थे।

जब गाड़ी प्लेटफ़ार्म के सिरे को पार करके आगे निकल गई, तो सूटधारी युवक ने अपनी लम्बी साँस को दबाने की चेष्टा करते हुए खद्दरधारी युवक से कहा—"मैं भी एक दिन इसी तरह एक फ़िल्म-एक्ट्रेस को विदा करने के लिए इसी स्टेशन पर आया था, इसी सिलसिले में एक ऐसी विचित्र घटना घट गई जिसका बड़ा गहरा प्रभाव मेरे जीवन पर पड़ा। किस्सा बड़ा दिलचस्प है। 'चलिए' भीतर बैठा जाय। उसके बाद अगर आपकी इच्छा हो तो मैं अपना किस्सा विस्तार के साथ आपको सुनाऊँ।"

खद्दरधारी युवक बोला—"मैं बड़े शौक़ से सुनना चाहूँगा।"

उसके बाद दोनों भीतर चले गए। जब दोनों एक ख़ाली बेञ्च पर बैठ गए, तो सूटधारी युवक एक सिगरेट जलाने के बाद अपना क़िस्सा कहने लगा—

प्रायः दस वर्ष पहले की बात है, तब मेरी उम्र २०, २१ वर्ष के क़रीब रही होगी। मैं युनिवर्सिटी में पढ़ता था। मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा था, और मेरे साथियों का कहना था कि मैं देखने में भी काफ़ी सुन्दर था। जीवन और यौवन के सम्बन्ध में मेरा दृष्टिकोण रंगीन, और साथ ही उन्मुक्त और उदार था। मैं भाव-जगत् में विचरण किया करता था, संदेह नहीं, और कविताएँ भी लिखा करता था; पर जितनी ही दिलचस्पी मुझे साहित्य में थी, उतनी ही फ़ुटबाल, क्रिकेट, सिनेमा और राजनीति में भी थी। इन सब विषयों पर मैं अपने भावपूर्ण नवयौवन के रंगीन चश्मे से ही विचार करता था। एक विशेष राजनीतिक महिला के प्रति मेरे भावुक हृदय में श्रद्धा का भाव इस हद तक उबल उठा था कि मैं अकसर आजीवन उनकी चरण-सेवा करने का स्वप्न देखा करता। एक ख्याति-प्राप्त साहित्यक महिला के संबंध में कभी-कभी ठीक उसी प्रकार के विचार मेरे मन में उमड़ उठते थे। क्रिकेट के खेल में एक बार में ३०० 'रन' का 'रेकार्ड' स्थापित करने के लिए विख्यात खिलाड़ी डॉन ब्रैडमैन का पार्श्वचर बनने की अभिलाषा भी कुछ कम अवसरों पर मेरे मन में नहीं जगा करती थी। पर मेरे इस 'हीरो-वर्शिप' की भावना की अपेक्षाकृत निश्चित और स्थिर परिणति हुई सिनेमा-जगत् में। धीरे-धीरे सिनेमा की दुनिया ने मुझे अपने माध्याकर्षण के केन्द्र में इस हद तक खींच लिया कि मेरे भीतर का और आस-पास का सारा संसार उस विचित्र, फेन्टेस्टिक और मनमोहक दुनिया के भीतर समा गया। उठते-

बैठते, सोते-जागते में सभी निराले जगत के स्वप्न देखने लगा। प्रत्येक प्रसिद्ध ऐक्टर और ऐक्ट्रेस की आकृति की सूक्ष्म से सूक्ष्म रेखा, स्पष्ट से स्पष्ट हाव-भाव मेरे मन में जैसे अमिट रूप से अंकित रहते थे। प्रत्येक लोकप्रिय फ़िल्म का कथानक मुझे नयी-नयी महत्त्वाकांक्षाओं के लिये प्रेरित करता था। प्रत्येक भावपूर्ण फ़िल्म-गीत की स्वर-लहरी सब समय मेरे कानों में गूँजती रहती थी।

मेरी ऐसी मानसिक अवस्था में एक बार एक प्रसिद्ध फ़िल्म अभिनेत्री लखनऊ आई। उसका असली नाम तो मैं न बताऊँगा, पर मैंने उसका जो नाम बाद में रखा था उसे आप जान लीजिए। उसका नाम मैंने रखा था सम्मोहिनी। आजकल किसी भी फ़िल्म-ऐक्ट्रेस का परिचय देते हुए सिनेमा-पत्रों के संपादक लिख देते हैं कि वह सुशिक्षिता और सुसंस्कृता है। पर इस समय भारत में बहुत-सी फ़िल्म-अभिनेत्रियाँ ऐसी हैं, जिनसे यदि आप घनिष्ट रूप से परीचित हो जायँ तो आपको पता चलेगा कि वे वास्तविक शिक्षा और संस्कृति से कोसों दूर हैं, और संस्कृति का जो झोल वे अपने स्वभाव के ऊपरी स्तर पर चढ़ाए रहती हैं उसकी पोल खुलते देर नहीं लगती। वे सब अधिकांश रूप में संचालकों के हाथ की कठपुतलियाँ होती हैं। संचालक यदि चतुर हो तो एक साधारण से साधारण और मूर्ख अभिनेत्री को भी ऊपरी बातों की सुगठित शिक्षा के द्वारा प्रसिद्धि-की चरम सीमा तक पहुँचा सकता है। अधिकांश ख्याति-प्राप्त फ़िल्म-अभिनेत्रियाँ अपने वास्तविक व्यक्तित्व के बल पर नहीं, बल्कि

फ़िल्म-संचालकों से प्राप्त नकली मुखड़ों को पहनने के कारण भोली जनता को पूजनीया बन जाती हैं। यह बात मुझे बाद में मालूम हुई। पर सम्मोहिनी के संबंध में यह बात नहीं कही जा सकती थी। वह सच्चे अर्थों में सुशिक्षिता और सुसंस्कृता थी। वह वास्तव में एक भले घर की लड़की थी, एम० ए० तक पढ़ी हुई थी और आंतरिक विश्वास से अभिनेत्री-पद को एक गौरवपूर्ण पद समझकर अपने माँ-बाप से झगड़कर फिल्मिस्तान में चली गई थी। इन सब कारणों से हमारी युनिवर्सिटी के छात्रों पर उसके व्यक्तित्व का बड़ा प्रभाव पड़ा। वह देखने में विशेष सुन्दरी नहीं थी, पर उसके मुख के भाव में संस्कृति और शालीनता का एक ऐसा विचित्र आकर्षण पाया जाता था जिसकी उपेक्षा सहज में नहीं की जा सकती थी।

मैंने अपने कुछ सहपाठियों को राज़ी करके छात्रों की ओर से उसे एक पार्टी दी। उस पार्टी में उससे प्रथम बार मेरा व्यक्तिगत परिचय हुआ। उसने पूर्ण आत्मविश्वास के साथ मुक्त रूप से हम लोगों के साथ बातें कीं, पर सुरुचि और शालीनता का निर्वाह उसने अंत तक किया। एक क्षण के लिये भी उसने हममें से किसी के मन में यह धारणा न जमने दी कि वह एक पेशेवर एक्ट्रेस है। एक सुशील और सद्गृहस्थ लड़की के से स्निग्ध शीतल व्यवहार और बातचीत से वह हम लोगों के मन पर बहुत ही अच्छा प्रभाव छोड़ती चली गई। मेरे साथ उसने विशेष रूप से स्नेहपूर्ण बातें कीं-जैसी बातें एक आदरणीया सयानी

स्त्री एक किशोर-कद्वाले लड़के के साथ कर सकती है। मुझे इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई; मैं इसमें कुछ अधिक चाहने की बात उसके संबन्ध में सोच भी नहीं सकता था।

उसके बाद जब तक वह लखनऊ में रही तब तक मैं उसके होटल में उससे मिलने के लिए नित्य जाता और उससे बातें करके किसी-न-किसी विषय की नयी और उपयोगी शिक्षा लेकर ही लौटता। प्रायः एक हफ़्ता बाद जब उसने बंबई को लौट चलने का विचार किया तो एक विशेष साहित्यिक संस्था ने उसे फ़ेयरवेल पार्टी देने का निश्चय किया, उस पार्टी में मैं भी निमंत्रित था। मैंने वहाँ एक कविता पढ़ी। कविता भावपूर्ण रही हो चाहे न रही हो, पर मैंने उसे निश्चय ही भावाकुल हो कर लिखा था और आवेश के साथ उसे पढ़ा था। कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार थीं—

अभी विदा दूँ कैसे रानी ?

अभी-अभी तो हिय-सागर में उमड़ी हैं लहरें तूफानी,
अभी-अभी मेरे मृत मन में हरियाली छाई कन-कन में
अभी-अभी इस बीहड़ बन में गूँजी पिक की पहली बानी।

अभी विदा दूँ कैसे रानी !

ऐसी तन्मयता से, अन्तर की ऐसी सच्ची भावना से मैं ने वह कविता गा कर पढ़ी थी कि श्रोताओं ने अत्यंत गंभीर और मौन भाव से उसे सुना और जिस को लक्ष्य करके वह कविता लिखी गई थी, उस की आँखों में एक उच्छ्वसित आवेग, एक पुलक—विमल

सजलता झलक उठी, उस समय से सम्मोहिनी एक दूसरी ही दृष्टि से मुझे देखने लगी। पार्टी समाप्त होने पर वह बड़े प्रेम से मेरा हाथ पकड़ मुझे अपनी मोटर में बिठाकर अपने होटल में ले गई। जो दूसरे छात्र उसे होटल तक पहुँचाने या मिलने आए उन सब को उसने दो-दो बातें करने के बाद बड़ी शालीनता से टरका दिया। जब मैं उस के पास अकेला रह गया, तो उस ने भावपूर्ण शब्दों में अपने अंतर की यह बात स्वीकार की कि अपने जीवन में आज पहली बार वह किसी पुरुष के हृदय की सचाई से प्रभावित हुई है, उस ने कहा—"मैं जहाँ भी गई हूँ, जनता ने मेरा आदर किया है, मुझे दावतें दी हैं और अभिनन्दन पत्र भी दिए हैं। पर मुझ से यह बात छिपी नहीं रही है कि बाहर से वे लोग कैसे ही सम्मान का भाव प्रकट क्यों न करें, भीतर से वे मुझ से भयंकर घृणा करते रहे हैं, मुझे एक बाजारू ऐक्ट्रेस—बल्कि वेश्या—समझ कर नाली के कीड़े से भी अधिक गन्दी और तुच्छ समझते रहे हैं, पर आज तुम ने आपने (आप उम्र में और डील-डौल में इतने छोटे लगते हैं कि आप से 'आप' कहते हुए संकोच मालूम होता है:—कह कर वह मुस्कराई) आज आप ने जो कविता पढ़ी उस ने जैसे मुझे अपने को एक नये और प्रकट रूप में जानने की प्रेरणा दी। उसे सुन कर अपने प्रति स्वयं मेरा सम्मान बढ़ गया।"

मैं ने ससंकोच, बड़े मीठे शब्दों में उसे इस के लिये धन्यवाद दिया कि उसे मेरी कविता पसन्द आई।

दूसरे दिन बाम्बे मेल से—इसी गाड़ी से, जो अभी छूटी है—

उसे जाना था, मैं और मेरे साथ के आठ-दस छात्र उसे 'सी-आफ़' करने के उद्देश्य से उस के साथ स्टेशन आए, पर उस दिन मेरे साथियों ने उस के स्वभाव में बड़ा परिवर्तन पाया, उस के पहले वह अपने सब मिलने वालों से स्नेह या सौजन्यपूर्वक बातें किया करती थी, पर उस दिन सब की उपेक्षा कर के, शिष्टाचार की तनिक भी परवा न कर, सब समय अकेले मेरे ही साथ दुनिया भर के छोटे-मोटे, साधारण और तुच्छ विषयों पर—जैसे युनिवर्सिटी की पढ़ाई, होस्टल का जीवन, फर्स्ट, सेकेण्ड, और इन्टर क्लास के वेटिंग रूमों में अन्तर, लखनऊ के होटलों के वेटरों की अशिष्टता, चाय-पान के गुण और अवगुण आदि इन्हीं विषयों पर—ट्रेन 'स्टार्ट' होने के समय तक, फ़र्स्ट क्लास के एक डिब्बे के बाहर खड़े-खड़े बातें करती रही, मैं मुग्ध भाव से सुनता रहा, केवल बीच-बीच में कभी-कभी एक आध वाक्य एकरसता को भंग करने के उद्देश्य से बोल देता था।

जब गार्ड ने सीटी दी, और प्लेटफ़ार्मों पर टहलने वाले यात्रीगण अपने-अपने डिब्बों में जा कर बैठने लगे, तो सम्मोहिनी ने अपनी हथेली से मेरी हथेली कस कर पकड़ ली, और यह कह कर कि "अभी काफ़ी वक्त है," मुझे भी अपने साथ कम्पार्टमेन्ट के भीतर घसीट ले गई।

उसे 'सी आफ़' करने को लाए गए सब छात्र बेवकूफ़ों की तरह देखते रह गए।

भीतर जा कर अपने मुख का भाव और बात-चीत का ढंग ही एक दम बदल दिया। उस के मुख का सहज विनोद-पूर्ण भाव

जैसे किसी जादू से छू मन्त्र हो गया और अचानक एक सफल वेदना उस की रसीली आँखों में घिर आई। उस ने अत्यन्त गम्भीर भाव से, धीरे से कहा—"मुझे विदा करते हुए तुम्हें सच-मुच क्या दुःख हो रहा है ? अपने हृदय पर हाथ रख कर सच-सच बताना।"

उस के प्रश्न पूछने के ढंग से मैं कुछ चौंका, पर उस की आँखों की वेदना-मय दृष्टि में न जाने क्या मोहिनी भरी थी, उस ने मेरी भावुकता को तल से सतह तक उभाड़ दिया, मैं ने भी इसी गंभीर भाव के साथ कहा—"मैं अपने अन्तःकरण से कहता हूँ कि आप के चले जाने से मैं बहुत दुःखी हूँ।"

इतने में इंजिन ने सीटी दी, मैं उत्तर के इरादे से उठने लगा, पर सम्मोहिनी ने कस कर मेरी कलाई पकड़ कर मुझे फिर से अपने पास अपनी सीट पर बिठा दिया और कहा—"अभी जल्दी क्या है" धीमी चाल से चलती हुई ट्रेन से उतरने का अभ्यास मुझे था, इसलिये मैं विशेष नहीं घबराया। कुछ देर बाद जब गाड़ी चलने लगी तो मैं ने हाथ जोड़ कर चलने की आज्ञा माँगी, पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब इस बार भी सम्मोहिनी ने कस कर मेरा हाथ पकड़ लिया, और कहा—"जल्दी क्या है, अगले स्टेशन में उतर जाना। लौटने में कुछ देर ज़रूर हो जावेगी, पर एक दिन मेरी खातिर देर ही सही ! क्यों ?"

उसका यह आग्रह मुझे वास्तव में प्रिय लगा, और मैं अगले स्टेशन में उतरने की बात पर राज़ी हो गया। मेरे साथ के छात्रों के

प्रति उसने ऐसी उपेक्षा दिखाई कि गाड़ी चलते समय भी उनकी ओर झाँका तक नहीं, मेरे प्रति वह इस क़दर तन्मय हो गई थी।

रास्ते में उसने अत्यंत गंभीर भाव से वेदना-भरे शब्दों में मुझ से उलहने के रूप में बताया कि मैं कितना बड़ा निर्मोही हूँ—मिलने पर हार्दिक स्नेह जताने के बाद इतनी जल्दी भूल जाना चाहता हूँ कि एक स्टेशन तक भी साथ देना नहीं चाहता, दूसरे की पीड़ा के प्रति इस क़दर उदासीन रहना किसी प्रकार भी उचित नहीं है; स्नेह-प्रेम के लिये लोग बड़ा से बड़ा बलिदान कर डालते हैं, और जो व्यक्ति इस क्षेत्र में विचार कर क़दम बढ़ाते हैं वे कभी महान् पुरुष नहीं हो सकते; इत्यादि-इत्यादि।

मैं हृद्गत भाव से उसकी बातें सुन रहा था। हमारे डिब्बे में हम दो व्यक्तियों के अतिरिक्त तीन व्यक्ति और थे। वे तीनों अंग्रेज़ थे—संभवतः ठेठ यूरोपियन। उनमें एक स्त्री थी और दो पुरुष थे। निश्चय ही वे हम लोगों की बातों का एक अंश भी समझ नहीं पा रहे थे, पर बड़े ग़ौर से हम लोगों की ओर देख रहे थे।

सम्मोहिनी की बातों से मेरे अन्तर के भी अंतर में एक अजीब-सी मथन-क्रिया चलने लगी थी। एक निराला परिवर्तन मुझ में आ रहा था, मुझे ऐसा लगता था जैसे मैं किसी के रहस्यमय तंत्र-मंत्र के प्रभाव से कुछ का कुछ बनता चला जा रहा हूँ। सम्मोहिनी की जादूभरी व्याकुल आँखों ने जैसे अपनी चुम्बक-शक्ति के प्रभाव से मेरी सम्पूर्ण आत्मा को कण-कण करके अपने भीतर समेटना शुरू कर दिया था। फल यह हुआ कि जब दूसरा स्टेशन आया, तो

गाड़ी से उतरने की बात ही मुझे याद नहीं आई—ऐसी भ्रांति मुझ में छा गई। सम्मोहिनी ने भी मुझे उतरने की याद नहीं दिलाई, जब एक टी० टी० आई० ने आकर मुझसे टिकट माँगा तो मेरे होश कुछ ठिकाने लगे। पर मेरे घबराकर उठने के पहले ही सम्मोहिनी ने बिना मेरी राय लिए लखनऊ से बम्बई तक के फर्स्टक्लास के किराए का पूरा रुपया उसके हाथ में देते हुए कहा—"हड़बड़ी के कारण लखनऊ स्टेशन में इनके लिए टिकट नहीं खरीदा जा सका। अब मेहरबानी करके एक टिकट इनके लिए बना दीजिए।" टी० टी० आई० उसी वक्त टिकट-घर में गया और थोड़ी देर में एक टिकट बनवा कर ले आया।

मैं भ्रांत अवस्था में अवश भाव से अपनी सीट पर चुपचाप बैठा रहा। मैं कुछ समझ ही नहीं पा रहा था कि यह सब क्या हो रहा है। "क्या मैं सचमुच भगाया जा रहा हूँ, जिसे अँगरेज़ी में कहते हैं 'किडनैप्ड' किया जाना ?"—मैंने अपने मन में प्रश्न किया। मन ने कोई उत्तर न दिया। बीच बीच में जब मैं भ्रांति की स्थिति में कुछ क्षण के लिए होश में आता तो उठ कर गाड़ी पर से उतर जाने की चेष्टा मुझ में जागती। पर मेरे तनिक भी हिलते ही सम्मोहिनी सहज भाव से मेरा हाथ पकड़ लेती। उसका जादूभरा स्पर्श और चुम्बक-भरी आँखों की रहस्यमयी चितवन मुझे फिर बैठे रहने को विवश कर देते। कुछ देर बाद गाड़ी उस स्टेशन को छोड़ कर भी चल पड़ी। एक बार यह पागलपन की भी इच्छा हुई कि खिड़की के रास्ते

चलती गाड़ी से कूद पड़ूँ। पर तत्काल ही वह मनोवेग किसी के सम्मोहन-मन्त्र से अपने आप ठंडा पड़ गया।

मुझे अपनी प्यारी युनिवर्सिटी का बिछोह माँ की गोद के बिछोह से भी अधिक सताने लगा, और अपने साथ के लड़कों के बिछुड़ने की याद से रह-रह कर मेरे मन में टीस-सी उठने लगी। मेरे मन की दशा उस समय ठीक वैसी ही हो रही थी जैसी एक किशोर-वयबालीनववधू की होती है, जो पहली बार ससुराल जाने पर एक ओर अपने आजन्म-परिचित माता-पिता, भाई-बहिन और सखी-सहेलियों के बिछोह से विकल होती है, और दूसरी ओर एक अपूर्व-परिचित जीवन की विचित्रता के कौतूहल से कंपित रहती है। वास्तव में उस समय की अपनी करुण परिस्थिति मुझे इस समय अत्यन्त हास्यास्पद भी लगती है, पर उस समय तो मुझे ऐसा लगता था जैसे मेरे स्थिर, शांत, सुन्दर, सुखद जीवन में एक भयङ्कर भूकम्प आ गया हो।

जब मैं कुछ शान्त हुआ तो मैंने एक बार बड़े गौर से उस आश्चर्य-मयी नारी की ओर देखा जो अपने प्रबल पौरुप से साहस-पूर्वक मुझे अपने साथ भगाये लिए जा रही थी। उसके मुख पर इस समय एक निराली ही मुसकान खेल रही थी। जो आत्म-विश्वास से पूर्ण होने के साथ ही स्नेह से अत्यंत सरस थी। उस ने बड़े ही मीठे स्वर से कहा—"मेरे व्यवहार ने तुम्हें स्पष्ट ही आश्चर्य में डाल दिया है। पर घबराने की कोई बात नहीं है। मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मेरे साथ जीवन की कोई पार्थिव अनु-

विधा तुम्हें नहीं रहेगी। छात्र-जीवन से अचानक संबंध टूट जाने से तुम्हें अवश्य ही दुःख हो रहा होगा, पर तुम्हें यह भी जानना चाहिए कि छात्र-जीवन ही मनुष्य-जीवन की चरम परिणति नहीं है। जिस व्यक्ति को लक्ष्य करके तुमने अपनी कविता में कहा था—'अभी विदा दें कैसे रानी!' वह स्वयं भी तुमसे बिछुड़ना नहीं चाहती थी। अगर वह अपने साथ तुम्हें भी लिये जा रही है तो इस बात से दुःखी होने का कारण तुम्हारे लिए नहीं होना चाहिए। इसलिये पिछले जीवन को एक दम भूल कर नये जीवन का स्वागत करने के लिये प्रसन्न मन से तैयार हो जाओ।

यह लेक्चर बघार कर उसने फिर एक बार धीमे से मेरी कलाई पकड़ ली। उस स्पर्श से मेरी रगों में नये सिरे से बिजली दौड़ गई। मैं चुप रहा, केवल भ्रांत-दृष्टि से उस अनोखी मर्दानी औरत को देखता हुआ मन-ही-मन यह प्रश्न करने लगा—"क्या वह सचमुच सहृदय है या एक धूर्त स्त्री ने अपने फंदे में मुझे फाँस लिया है? नहीं, वह धूर्त कदापि नहीं हो सकती (अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं देते हुए मैं अपने मन में कहने लगा—) मेरे साथ धूर्तता कर के उसे लाभ तो क्या हो सकता है! वह मनचली भले ही हो, पर धूर्त नहीं हो सकती। उसकी आँखों में सच्ची सहृदयता का भाव झलक रहा है। पर इस तरह की धोखेबाज़ी से वह मुझे अपने साथ क्यों भगाये लिए जाती है? वह मुझसे प्रेम करती है। पर प्रेम में इस तरह की ज़बरदस्ती कैसी? वह जानती है कि मैं भी उसे चाहता हूँ। पर इस हद तक तो मैंने कभी कल्पना नहीं

की कि उसके साथ भाग निकलूँ। तो भी इस से क्या अच्छा ? वह सम्भवतः जानती है कि बाद में मैं इस हद तक भी……"

इस तरह की ऊटपटांग प्रश्नावली मेरे मन में चलने लगी। रास्ते भर वह तरह-तरह की बातों से मेरे उखड़े हुए मन को फिर से जमाने की चेष्टा करती रही।

× × × ×

बंबई की एक आलीशान इमारत में उसने एक हिस्सा किराये पर ले रखा था। मैं वहीं उसके साथ रहने लगा। उस विशाल नगरी का राग-रंगमय वातावरण देखकर मेरे मन का वह सारा अवसाद जाता रहा जिसने लखनऊ से बंबई तक की रेल-यात्रा के अवसर पर मुझे बुरी तरह से धर दबाया था। उस उन्मुक्त क्षेत्र में मेरे भीतर दबे हुए महत्त्वकांक्षा के बीज ने जैसे अपने उपयुक्त मिट्टी पा ली और वह किसी जादू की माया से रातों-रात पनप उठा।

सम्मोहिनी ने अपने प्रभाव से मुझे एक फिल्म कम्पनी में गीत-लेखक की हैसियत से नियुक्त करवा दिया। मुझे काम नहीं के बराबर करना पड़ता था, और तनख्वाह चोखी मिलती थी। युनिवर्सिटी की पढ़ाई के अकस्मात छूटने का सारा क्षोभ मेरे मन से जाता रहा, और मैं भूत के लिये रोना छोड़कर वर्तमान में जमने की चेष्टा करता हुआ क्षितिज के उस पार की रंगीनी के प्रति बड़े वेग से आकर्षित होने के लक्षण प्रकट करने लगा। पर वर्तमान का मध्याकर्षण बड़ा ज़बर्दस्त सिद्ध हुआ, जिसके

फलस्वरूप मैं अपने मन के पंख पसारकर क्षितिज के उस पार तक उड़ चलने में एकदम असमर्थ सिद्ध हुआ।

आरंभ में, जब लखनऊ में सम्मोहिनी से मेरा परिचय पहले पहल हुआ था तब से लेकर बंबई पहुँचने के कुछ समय बाद तक—उसके प्रति मेरे मन का भाव बहुत ही धूमिल, अस्पष्ट और छायात्मक रहा। पर बंबई आने पर जब मेरी एक निश्चित आर्थिक स्थिति बन गई और मेरे महत्वाकांक्षापूर्ण भावी जीवन की रूप-रेखा भी कल्पना के सुनहले रंगों से रंगीन होकर मेरी आँखों के आगे झलमलाने लगी, तो मैं कुछ दूसरी ही दृष्टि से सम्मोहिनी को देखने लगा। लाख चेष्टा करने पर भी अपने भावी जीवन का कोई भी चित्र मेरे मन की आँखों के आगे ऐसा नहीं खिंच पाता था जिसमें सम्मोहिनी एक निश्चित स्थान अधिकार न किये बैठी हो। पहले तो मेरे ज्ञात मन की समझ ही में यह बात न आई कि सम्मोहिनी का छायाचित्र क्यों मेरे प्रत्येक रंगीन कल्पनामय चित्र को ढक देता है। बाद में सारी बात एक दूसरे ही रूप में मेरे सामने आई। मेरा जो अनुभवहीन नवयुवक हृदय आज तक किसी रमणी के प्रति केवल दूर ही से श्रद्धा की भावना व्यक्त करके पूर्ण संतुष्ट था, वह अत्यधिक निकटता में आने के कारण जैसे किसी रासायनिक प्रतिक्रिया से प्रेम-क्षुधा-पीड़ित और स्पर्श-सुख-लालसी हो उठा।

सम्मोहिनी ने अपनी ढिठाई से मेरे भीतर एक अनोखी रगड़

पैदा कर दी थी, जिससे उत्पन्न चिनागरी ने मेरे हृदय में एक अच्छी खासी आग सुलगा दी थी।

कुछ समय तक वह उस आग को और अधिक तीव्रता से सुलगाती रही। मेरे साथ उसका व्यवहार पहले से अधिक सहृदयता-पूर्ण, अधिक स्नेहमय और अधिक रंगमय होता चला गया, जिस का अर्थ अब मैं बिलकुल नये ही रूप से और नये ही ढंग से लगाने लगा।

उसके पास प्रतिदिन तरह-तरह के लोग आते थे, और प्रशंसकों के साथ मोटरों में सवार होकर वह सैर के लिये या किसी 'ज़रूरी काम' के लिये प्रायः प्रतिदिन शाम को बाहर निकला करती थी। पर दिन में एक-न-एक समय वह दो ढाई घंटे के लिये मेरा साथ अवश्य देती थी --या तो घर ही में बैठकर तरह-तरह के सुखद विषयों पर आकर्षक ढंग से बातें किया करती थी, या विक्टोरिया गार्डन्स या मलाबार हिल के किसी एकांत स्थान में या समुद्र के किसी अपेक्षाकृत निर्जन तट पर मुझे अपने साथ लेजाकर जगत् के किस्सों की कड़ी आलोचना करके जीवन की वास्तविकता की ओर मेरा ध्यान खींचने की चेष्टा करती रहती। इस कारण उसके किसी भी प्रशंसक के प्रति मेरे मन में कभी ईर्ष्या की भावना का लेश भी नहीं जागा। इस सम्बन्ध में मेरा मन यह सोचकर तसल्ली पा लेता कि प्रशंसकों के निकट संसर्ग में आये बिना कोई भी अभिनेत्री ख्याति प्राप्त नहीं कर सकती, और ख्याति पाये बिना एक अभिनेत्री का जीवन कोई मानी

नहीं रखता। बल्कि मुझे इस बात से प्रसन्नता होती थी कि उसके इतने अधिक प्रशंसक हैं, क्योंकि इससे मेरे अहंभाव की तुष्टि होती थी। मैं सोचता था कि इतने अधिक प्रशंसकों के रहते हुए भी उसने मुझी को अपना निकटतम साथी चुना है, और केवल मुझे ही अपने साथ भगा लाने योग्य समझा है।

पर एक दिन एक अनोखी परिस्थिति ने मेरी आँखें खोल दीं।

फिल्मिस्तान में मुझे दो-एक साथी ऐसे मिल गए थे जो भंग छानने के बड़े प्रेमी थे। उनकी सोहबत में मैंने भी धीरे-धीरे यह आदत डाल ली। साथी तो मुझे हालावादी भी काफ़ी मिले थे, पर किसी अज्ञात संस्कारवश शराबख़ोरी के चक्कर में पड़ने का साहस मुझे नहीं हुआ। भङ्ग को 'शिवजी की बूटी' मान कर इस घोर मूर्खतापूर्ण 'पौराणिक विश्वास' से अपने आप को ठगता हुआ मैं उसकी तरंग में बहने का आदी हो गया। आरम्भ में मुझे इसका नशा कुछ अजीब, बेतुका और बेलज्जत मालूम हुआ और उससे मेरी तबीयत ख़राब होने के सिवा न तो किसी प्रकार की शारीरिक पुलक का अनुभव कभी हुआ, न किसी प्रकार के मानसिक उल्लास का। पर बाद में धीरे-धीरे मुझे भंग छानने के बाद मानसिक अवसाद के क्षणों में यह अनुभव होने लगा कि कुछ रहस्यमय संगीत-स्वर विविध रंगमय रूप धारण करके मेरे चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं। संगीत के प्रति विशेष झुकाव होने के कारण मैं उन रहस्यमयी छाया-छवियों में ख़ास तौर से दिलचस्पी लेने लगा और उनमें निराले प्रकार का आनन्द मुझे प्राप्त होने

लगा। तब से भङ्ग का मज़ा मुझे मिलने लगा, और मैं नशे की हालत में, अपने खयाली क्षणों में उन छाया-छवियों को जीवित रूप में प्राप्त करने के लिए अत्यंत उत्सुक हो उठा। एक ओर भङ्ग की तरङ्ग में मैं बहा जा रहा था, दूसरी ओर सम्मोहिनी का प्रेमाकर्षण बड़ी तेज़ी से मुझे अपनी ओर खींच रहा था। इन दोनों की खींचा-तानी के कारण मेरी मानसिक दशा असाधारण रूप से अस्वस्थ हो उठी। मैंने इन दोनों द्वन्द्वों को एक रूप में मिलाने की पूरी चेष्टा की और काल्पनिक छाया-छवियों की प्राण-प्रतिष्ठा जीवित प्रेम-प्रतिमा में करनी चाहिए। आप स्वभावतः यह सोचते होंगे कि मैं एक सीधी-सी बात को बेकार के लिए इस तरह घुमा-फिरा कर कहना चाहता हूँ। पर असल में मेरी मानसिक उलझनें कुछ ऐसी अनोखी रही हैं कि बिना मनोवैज्ञानिक व्याख्या के मेरे जीवन की किसी भी घटना का सच्चा स्वरूप आप को नहीं मिल सकता। खैर!

एक दिन मैंने भंग की मात्रा कुछ अधिक ली थी। उस दिन सम्मोहिनी सुबह से ही गायब थी। उसने सुबह ही मुझे बतला दिया था कि आज वह तमाम दिन बहुत व्यस्त रहेगी। दो-तीन जगह उसे निमंत्रण था और बाकी दो-तीन जगह उसे स्वयं जाकर कुछ व्यक्तियों से मिलना था। निमंत्रण देने वाले व्यक्ति कौन थे, और किन व्यक्तियों से उसे स्वयं जाकर मिलना था, इस सम्बन्ध में न उसने कुछ बताया और न मेरे मन में ही जानने की कोई उत्सुकता थी। जितने समय वह मेरे निकट रहती

थी उतने ही समय के लिये वह मेरे लिये सत्य थी—परिपूर्ण, जीवित सत्य, और जितने समय वह मुझसे अलग रहती थी उतने समय के लिये वह मेरे लिये एक छाया मात्र थी—एक अतीन्द्रिय, स्पर्शातीत छाया जिसकी न तो किसी भी पुरुष के संसर्ग से कलुषित होने की संभावना मैं समझता था, न जिसके सम्बन्ध में यह विश्वास मुझे होता था कि वह (छाया) कभी किसी सशरीरी पुरुष की पकड़ में आ सकेगी। इसलिये उसकी अनुपस्थिति में ईर्ष्या का भाव किसी भी रूप में मेरे आगे नहीं फटकता था।

मैं कह चुका हूँ कि उस दिन मैंने भंग कुछ अधिक मात्रा में ली थी। जब मेरे मास्तिष्क में उसके नशे का रंग चढ़ने लगा तो अनुपस्थित सम्मोहिनी की वही अतीन्द्रिय छाया मिनट-मिनट भर में अपना रूप बदलकर विचित्र-विचित्र रंगों से रंजित होकर, मेरे मन की रागमयी आँखों के आगे अद्भुत लीला-लास्य से विहरने लगी। दिन भर मैं अपने कमरे में अकेले बैठा हुआ उसी आसुरी मानसिक अवस्था में झूमता रहा, और उस पल-पल में भेप बदलने वाली छाया को अपने जीवित प्राणों के बंधन से बाँधकर उसे सजीव रूप में पकड़ पाने की उन्मादकारी लालसा से पीड़ित रहा। उस दिन जीवन में पहली बार मेरे मन की अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ मेरे शरीर के रक्तकणों—बल्कि रक्त के परमाणुओं—के भीतर प्रवेश करके मेरे हाड़-मांस के शरीर की चमड़ियों में प्रवाहित होने लगी।

इस प्रकार की अनुभूति का फल यह हुआ कि जब रात में प्राय: १०॥ बजे के करीब सम्मोहिनी घर वापस आई तो मेरा उन्माद चरम सीमा को पहुँच गया।

पता नहीं क्यों, उसका चेहरा उस समय बहुत मुरझाया हुआ था, इस हद तक कि मेरी उस नशे की हालत में भी उसके मुख का वह चकित और म्लान भाव मुझ से छिपा न रहा। पर इस बात से मेरा नशा ठंडा पड़ने के बजाय और अधिक भड़क उठा।

उसने मेरे निकट आकर मरे मन से मुझ से पूछा—"दिन-भर क्या घर ही पर बैठे थे ? कहीं टहलने नहीं गए ?"

"नहीं, कुछ सुस्ती-सी मालूम हुई और मैं यहीं बैठा रह गया।"

"खाना खा लिया ?"–उसी उदासीनता से अत्यंत रूखे स्वर में उसने पूछा। आज उसकी वह उदासीनता आश्चर्यजनक थी। यदि मेरी मानसिक स्थिति उस समय साधारण स्तर पर होती तो उसकी वह रुखाई मुझे काट खाती। पर आज तो मेरे मन की दशा ही कुछ विचित्र थी।

मैंने कहा—"हाँ, कुछ खा लिया है।" यह कहता हुआ मैं अपनी लालसा-भरी दृष्टि को एक अजीब ढंग से उसके मुख पर गड़ाये रहा। निश्चय ही मेरी उस समय की दृष्टि में एक निराला उन्माद झलक रहा होगा, और संभवत: इसी कारण सम्मोहिनी के मुख पर घबराहट की एक हलकी-सी छाया घिर आई। पर उसने तत्काल सँभल कर अपनी आवाज़ में स्वाभाविकता लाने की चेष्टा करते हुए कहा—"अच्छा तो अब पलंग पर लेट जाओ,

और आराम करो। मैं भी दिन भर के चक्करों के बाद बहुत थकी हुई हूँ लेट जाना चाहती हूँ।" यह कह कर वह जाने लगी। मुझे सहसा न जाने क्या दुष्प्रेरणा हुई, मैंने तत्काल उसे टोकते हुए कहा—"ज़रा ठहरना! मुझे एक ज़रूरी बात करनी है।"

सम्मोहिनी ठिठक कर खड़ी हो गई, और अत्यंत आश्चर्य और साथ ही घबराहट के साथ मेरी ओर देखती हुई बोली—"क्यों क्या बात है?"

मैंने कहा—"ज़रा बैठो, तब—"

वह अपनी तीव्र दृष्टि से मेरे मन का वास्तविक भाव जानने की चेष्टा करती हुई, पास ही एक कुर्सी पर बैठ गई। और तब बोली—"लो! अब कहो, तुम्हें क्या कहना है?"

मैंने कहा—"सम्मोहिनी, आज मेरा जी कुछ अच्छा नहीं है, इसलिये आज सोने की जल्दी न करो, बल्कि मेरे पास बैठी रहो। तुम्हारा पास बैठना मुझे अच्छा लगता है।"

"अच्छी बात है। मैं बैठी हूँ। अब तो निश्चय ही तुम्हारा जी बहुत कुछ हल्का हो गया होगा? या अब भी कुछ बेचैनी बाकी है?"

उसके बोलने का ढंग आज कुछ ऐसा अनोखापन लिये हुए था कि भंग के नशे की उस हालत में भी मेरा उत्साह बहुत कुछ ठंढा पड़ गया, और साहस क्षीण हो गया। प्रायः एक मिनट तक कमरे में सन्नाटा छाया रहा। बाहर से मोटरों की पों-पों और 'विक्टोरिया' के घोड़ों के टापों की आवाज़ मेरे भंग के नशे से आच्छन्न कानों में तोपों और बम के गोलों के स्फोट के रूप में आ रही थी।

पर उस ओर से ध्यान हटा कर अपने पूर्व निर्धारित एक मात्र लक्ष्य लिए मैं अपने मन को केन्द्रित करने और बिखरी हुई शक्ति को बटोरने लगा।

कुछ खाँस कर गला साफ़ करते हुए मैंने कहा—"सम्मोहिनी, अब हम दोनों के बीच स्थायी संबंध स्थापित होने में देर किस बात की है ?"

अत्यन्त भ्रांत भाव से मेरी ओर देखते हुए सम्मोहिनी ने कुछ तीखी आवाज़ में पूछा—"कैसा स्थायी संबन्ध ?"

मैंने लड़खड़ाती हुई ज़बान से कहा—"यही कि—मेरा मतलब यह है कि—क्या तुम मेरा मतलब समझी नहीं ?"

"नहीं ! क़तई नहीं !" उसने दृढ़ता के साथ कहा। मैंने कहा—"मेरा मतलब—मैं जान गया हूँ कि तुम मुझे कितना चाहती हो। मैं प्रेम के विषय में बड़ा मूर्ख रहा हूँ, सम्मोहिनी ! यह बात विश्वास योग्य न होने पर भी मैं तुमसे सच कहता हूँ, इतने दिनों तक मैं ठीक से समझ न पाया कि तुम मुझे अपने साथ भगा कर यहाँ क्यों ले आईं। पर अब मैं उस बात के महत्त्व को भली-भाँति समझ गया हूँ। मेरा यह समझना तब सम्भव हुआ है जब तुम्हारे प्रति स्वयं मेरी भावना में उथल-पुथल मचने लगी है। प्रेम की तन्मयता क्या चीज़ है यह बात आज मेरी समझ से स्पष्ट आ रही है और इसके लिए मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ, क्योंकि तुम्हीं ने मुझे जीवन को और यौवन को नये दृष्टि-कोण से देखने का सबक़ सिखाया है। पर क्या अब इस बात के लिए समय नहीं आ गया

है कि हम दोनों के पारस्परिक प्रेम को सामाजिक रूप दिया जाय ?"

सम्मोहिनी के मुख के भाव से स्पष्ट पता चलता था कि वह मेरी बात सुन कर कल्पनातीत रूप से भयभीत हो उठी है। भीत भाव से उसने पूछा—"कैसा सामाजिक रूप ?"

उसकी घबराहट से तनिक भी विचलित न होकर मैंने कहा—"तुम क्या समझी नहीं ! मेरा मतलब विवाह से है !"

सम्मोहिनी तमतमाती हुई उठ खड़ी हुई और फनफनाती हुई बोली—"मैं तुम्हें धूर्त तो नहीं कहूँगी, पर तुम मूर्ख वज्रमूर्ख हो !"

अब आश्चर्य और घबराहट की बारी मेरी थी। मैं भी उठ खड़ा हुआ और भ्रांत भाव से बोला—"क्या कोई अनुचित बात मेरे मुँह से निकल गई है ?"

उसने उसी रोब के साथ कहा—तुमने केवल अनुचित ही नहीं बल्कि अनर्थ-भरी बात कही है। विवाह ! तुम्हें आज तक मालूम हो जाना चाहिये था कि पहले ही दिन से मैं तुम्हें उस दृष्टि से देखती आई हूँ जिस दृष्टि से एक सयानी स्त्री एक छोटे बच्चे को देखती है। तुम इतने बड़े मूर्ख हो कि इस सीधी-सी बात को समझ न पाए, और अपने प्रति मेरे स्नेह-भाव का कुछ दूसरा ही अर्थ लगाकर विवाह का प्रस्ताव करने चले हो। मेरे इतने दिनों के व्यावहार में तुमने कौन-सी ऐसी बात पाई जिससे तुम्हारे मन में इस तरह की बेतुकी और बेहूदा सूझ पैदा हो गई ?"

मेरा सारा नशा काफ़ूर हो गया था। मैं दरअसल वज्रमूर्ख की

तरह उसकी ओर आँखें फाड़ फाड़ कर देखता रह गया। इतने दिनों तक मैं उसके मुख की जिस आकृति से परिचित था, वह इस समय मुझे एक दम बदली हुई मालूम हुई। प्रायः ४५ वर्ष की अधेड़ स्त्री का-सा गाम्भीर्य उसके मुख पर छा गया था। उसके नवयौवनोचित स्वभाव के जिस सहज चंचल उल्लास से मैं इतने दिनों प्रभावित था वह पल में न जाने कहाँ गायब हो गया था। मैं मन ही मन कहने लगा—"तब क्या सचमुच सम्मोहिनी को ठीक तरह से समझने में मुझसे इतनी बड़ी भूल हो गई! इतना बड़ा अंधा निकला मैं! मेरे अन्तःकरण ने मुझे ऐसा भयङ्कर धोखा दिया! क्या यह संभव है?......"

कुछ भी हो, प्रकट रूप में मैंने कहा—"मैं अपने मूर्खता-पूर्ण प्रस्ताव के लिये बहुत अधिक लज्जित हूँ और हृदय से उसके लिए क्षमा चाहता हूँ। आज तुमने मेरी आँखें फिर नये सिरे से खोल दीं। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि फिर कभी इस प्रकार की भद्दी भूल मुझ से न होगी।" यह कह कर मैं अपने कमरे में चला गया, और वहाँ पलंग पर चारों शाने चित लेट गया।

तब से सम्मोहिनी के और मेरे बीच बड़ा भारी व्यावहारिक अन्तर आ गया। मैं उसी के साथ रहने लगा, पर बिलकुल दूसरी ही भावनाओं को लेकर। उस दिन से मेरी प्रकृति में एक निश्चित परिवर्तन आ गया और मेरी मानसिक दृष्टि में पहले से बहुत अधिक स्पष्टता आ गई। फिल्मों के लिये कहानियाँ और गीत लिखने का क्रम मैंने जारी रखा। इसी सिलसिले में कुछ नयी

फिल्म-अभिनेत्रियों से मेरा घनिष्ठ परिचय हो गया; पर मैं प्रत्येक के साथ अपने व्यवहार में बड़ा सतर्क रहने लगा, और किसी के भी साथ किसी भी प्रकार का घनिष्ठ सम्बंध स्थापित करने की चेष्टा मैंने नहीं की।

सम्मोहिनी ने मेरे प्रति विशेष उदासीनता का-सा रुख़ अख़्तियार कर लिया था, और एक ही मकान में रहते हुए भी हम दोनों एक दूसरे से एकरस अपरिचित, विजातीय प्राणियों की तरह रहने लगे थे उस विशेष घटना के कुछ समय बाद से एक नये व्यक्ति ने हमारे मकान में आने जाने का क्रम बना लिया। एक दिन सम्मोहिनी ने न जाने क्या सोचकर उससे मेरा परिचय कराया। मुझे मालूम हुआ कि उसका नाम गोपीनाथ शर्मा है और वह भी मेरी ही तरह फिल्मों के लिये कहानियाँ, डॉयलाग, गीत आदि लिखा करता है और इस क्षेत्र में काफी प्रसिद्धि पा चुका है। उसके नाम से और काम से मैं परिचित था, पर व्यक्तिगत रूप से उससे मेरा परिचय नहीं था। वह क़द में कुछ ठिगना था, पर देखने में काफ़ी सुन्दर लगता था, और शील स्वभाव में भी बहुत शिष्ट, विनयी और स्नेही लगता था। पहले ही दिन से मैं इस बात पर ग़ौर कर रहा था कि सम्मोहिनी उसके साथ ठीक उसी रूप में पेश आ रही थी जिस रूप में वह पहले पहल, लखनऊ में, मेरे साथ पेश आई थी। वही मधुर मुसकान, वही चंचल कटाक्ष, वह स्निग्ध सरसता, वही यौवनोचित उल्लास से भरी, जी को लुभानेवाली बातों की फुलझड़ियाँ।

गोपीनाथ को उसकी एक-एक बात, एक-एक मुद्रा अत्यन्त मार्मिक रूप से प्रभावित करती थी, यह मैं स्पष्ट देख रहा था। प्रायः प्रतिदिन नियमित रूप से गोपीनाथ उससे मिलने आता और उसे अपने साथ ले जाता---कहाँ ले जाता। इस बात की कोई भी जानकारी मुझे न रहती।

गोपीनाथ के साथ सम्मोहिनी की घनिष्ठता देखकर मेरे मन में धीरे-धीरे एक ऐसी भावना घर करने लगी जिसे किसी भी हालत में प्रियकर नहीं कहा जा सकता। मैं उस भावना को दबाने की लाख चेष्टा करता, पर वह समस्त अवरोधों को तोड़-फोड़ कर ऊपर उठ आती और मेरे मस्तिष्क की नसों में एक भयंकर ऐंठन उत्पन्न कर देती। ईर्ष्या का वह भूत विशेष कर ऐसे क्षणों में मुझे तंग करता जब वह मुझे मकान में अकेला पाता। मेरे मन में यह ध्रुव विश्वास जम गया कि गोपीनाथ के साथ सम्मोहिनी का प्रेम-संबंध स्थापित हो चुका है और अब शीघ्र ही दोनों विवाह-बंधन में बँधने की तैयारियाँ कर रहे हैं। ईर्ष्या के साथ ही गोपीनाथ के प्रति मेरे मन में एक प्रकार के आदर का भाव भी उत्पन्न होने लगा, विशेषकर यह सोच कर कि वह सम्मोहिनी की तुलना में मेरी तरह 'बच्चा' नहीं है (उसकी उम्र २६-२७ साल के क़रीब होगी) और जीवन और जगत के विषय में मुझसे अधिक अनुभवी है (कम से कम मेरी धारणा उसके संबंध में ऐसी ही थी)। फिर भी रह-रहकर समय असमय यह भावना मुझे असहनीय पीड़ा पहुँचाती रहती थी कि सम्मोहिनी ने मेरे छल-रहित, सांसारिक अनुभव से हीन, भावुक हृदय के भोलेपन का पूरा लाभ उठाकर, मुझे अपने साथ लगाकर

मुझे अच्छा बेवकूफ़ बनाया और अंत में दूध की मक्खी की तरह अलग फेंक दिया। सब से अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि वह सब होने पर भी उसके प्रति मेरे हृदय का प्रेम-भाव घटने के बजाय और अधिक तीव्र हो उठा। बल्कि सच पूछा जाय तो सच्चे प्रेम की मार्मिक अनुभूति से मेरा वास्तविक परिचय पहली बार तब हुआ जब सम्मोहिनी ने मेरे प्रेम-प्रस्ताव को ठुकरा दिया! जब मैंने उससे विवाह का प्रस्ताव किया था तब मेरे भीतर एक ऐसी रोमांटिक प्रवृत्ति काम कर रही थी जो काल्पनिकता के रंग से रंगी न थी, पर जब सम्मोहिनी ने उस प्रस्ताव के लिये मेरा तिरस्कार किया, तो धीरे-धीरे मेरे भीतर जो प्रेमानुभूति जागी वह मेरे हृदय के रक्त से रंगीन होती चली गई। उस घटना ने मेरे किशोर-हृदय की काल्पनिकता के समस्त रंगीन जालों को छिन्न-भिन्न करके मुझे सहसा जीवन की वास्तविक अनुभूति के केन्द्र में लाकर खड़ा कर दिया था। और उसके बाद जब गोपीनाथ से सम्मोहिनी की घनिष्ठता दिन पर दिन बढ़ता हुआ रूप मैंने देखा तो वास्तविकता की वह अनुभूति सहस्रों तीखे काँटों से मेरे सारे अन्तर्तम को स्पर्श करने लगी।

प्रारंभ में प्रायः दो महीने तक गोपीनाथ के चेहरे पर मुझे एक निराले उल्लसित भाव की दीप्ति बराबर दमकती हुई दिखाई देती रही। उस अभिनव दमक से उसके मुख का सौन्दर्य्य कई गुना अधिक खिला हुआ मालूम होता था। पर दो महीने बाद मैंने इस बात पर गौर किया कि उसके चेहरे की वह दमक दिन पर दिन फीकी पड़ती जाती है। बाद में ऐसी तीव्र गति से उसके मुख के मुरझाने का क्रम चला कि मैं हैरानी में पड़ गया, और कुछ कारण समझ ही न

पाया। मुझे उसकी विशेष घनिष्ठता न होने से वह अपने मन की बात मुझसे कुछ भी नहीं बताता था, और सम्मोहिनी से इस संबंध में कुछ जानने की आशा मैं कर ही नहीं सकता था, मैं प्रतिदिन सम्मोहिनी के मुख के भाव से इस नवीन रहस्य का कुछ पता लगाने की चेष्टा करने लगा, पर इस चेष्टा में मुझे पूर्णरूप से असफलता मिली। सम्मोहिनी के मुख पर किसी भी प्रकार के परिवर्तन का लेश भी मुझे नहीं दिखाई दिया। वह गोपीनाथ के साथ मेरे सामने, चाय पीते समय या भोजन के अवसर पर या आराम के क्षणों में अब भी पहले की ही तरह मीठी मुस्कान, चंचल कटाक्ष और उल्लसित किलकारियों के साथ रंग-रस की बातें करती थी। पर गोपीनाथ से उस किलकारी की प्रतिध्वनि किसी भी रूप में वह नहीं पाती थी। कभी-कभी मरे मन से वह भले ही उसकी किसी मन मौजी बात पर या चुटकुले पर थोड़ा मुसकरा देता हो, पर ऐसे क्षणों में मुझ से यह बात छिपी न रहती कि वह क्षीण मुसकान रोने का ही बदला हुआ रूप है।

धीरे-धीरे सम्मोहिनी के पास गोपीनाथ का आना जाना कम होता चला गया और कुछ समय बाद तो उसने एक दम ही आना बन्द कर दिया। मैंने सोचा था कि इस बात से सम्मोहिनी के हृदय को काफ़ी चोट पहुँचेगी। पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि गोपीनाथ का संग छूट जाने के बाद वह पहले से अधिक स्वस्थ, सुन्दर और प्रसन्न जान पड़ती है।

इसके बाद एक दिन कुछ स्थानीय पत्रों में यह संवाद छपा कि गोपीनाथ शर्मा नामक एक फिल्म-जगत् के कथाकार ने पिस्तौल

आत्महत्या कर ली है। उसी संवाद के साथ यह भी छपा था कि अपनी मनोनीत प्रेमिका से किसी कारण विवाह न हो सकने के कारण उसने आत्महत्या की है। यह संवाद पढ़कर मैं मर्माहत और आतंकित हो उठा। गोपीनाथ के साथ सम्मोहिनी के संबंध की जो कल्पना इतने दिनों तक मैंने कर रखी थी वह इस क़दर भ्रमपूर्ण सिद्ध होगी यह मैंने नहीं सोचा था। मैंने यह जानना चाहा कि इस संवाद से सम्मोहिनी के मन में क्या प्रतिक्रिया हुई है। मैं अखबार लेकर सीधे उसके कमरे में पहुँचा। वह बाहर निकलने की तैयारी कर रही थी और शृंगार-प्रसाधन प्राय: समाप्त कर चुकी थी। मैंने उसे वह मर्मान्तक समाचार पढ़ने को दिया। पढ़ते ही उसका मुख अत्यन्त गंभीर हो आया। प्राय: पाँच मिनट तक अखबार हाथ में लिये लिये खड़ी रही। उसकी शून्य दृष्टि उसी विशेष संवाद की ओर केन्द्रित हो गई। ऐसा जान पड़ता था जैसे वह संवाद का ठीक-ठीक अर्थ समझ ही न पाती हो। उसके बाद उसकी आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगे, और वह धम्म से कौच पर बैठ गई। अखबार को नीचे फेंककर उसने दोनों हाथों से अपनी आँखें ढक लीं, प्राय: दस मिनट तक वह उसी अवस्था में बैठी रही। उसके बाद अकस्मात् उठ खड़ी हुई और सीधे अपने सोने के कमरे में चली गई। स्थिति की गंभीरता देखकर मैं भी चुपचाप वापस चला गया।

प्राय: एक हफ़्ते बाद जब वह कुछ स्थिर हुई तो एक दिन शाम को चाय पान के अवसर पर मैंने साहसपूर्वक गोपीनाथ की दु:खद मृत्यु की चर्चा चलाई। सम्मोहिनी ने शांत भाव से कहा "मुझे

पता नहीं था कि मेरे सौहार्द्र का वह ऐसा ग़लत अर्थ लगावेंगे। मैं उन्हें अपने बड़े भाई की तरह मानती थी और उनसे अच्छा स्नेह रखती थी। पता नहीं, विवाह की बेतुकी कल्पना उनके मन में कैसे उत्पन्न हो गई! एक दिन मैंने जब साफ़ इनकार कर दिया तो उन्होंने तब से मेरे पास आना ही बंद कर दिया, और अन्त में...!"

मैंने मन-ही-मन उसे इस बात के लिये धन्यवाद दिया कि उसने इस सिलसिले में मेरा दृष्टान्त पेश नहीं किया, वर्ना मेरे भीतर के नासूर के स्थान पर बड़ी मार्मिक चोट पहुँचती। उस शोक जनक घटना के बाद दिन बीतते चले गए—दिन पर दिन बीता, मास पर मास और साल पर साल। सम्मोहिनी जिस फ़िल्म कम्पनी में पहले काम करती थी, उससे अलग हो चुकी थी, और उसने अपनी एक अलग कम्पनी 'मोहन मूवीटोन लिमिटेड' के नाम से खड़ी कर ली थी। मैं भी उससे अलग होकर एक दूसरे किराये के मकान में जाकर रहने लगा था, और ठेके के आधार पर विभिन्न कम्पनियों में काम किया करता था। सम्मोहिनी के यहाँ मैं मुद्दत से नहीं गया था। उसे मेरी कोई कहानी कभी पसंद न आई। इस लिये न उसने मुझे कभी अपने यहाँ काम के लिये बुलाया, न मैं ही कभी अपने आप उसके पास गया। पाँच छः महीने में एक बार फ़िल्मी दुनिया की कुछ विशेष पार्टियों में उससे ऊपरी तौर से भेंट हो जाया करती थी। ऐसे अवसरों पर उससे मेरी जो बातें होती थीं वे साधारण शिष्टाचार तक सीमित रहती थीं, उसके भीतरी जीवन के किसी भी बात का

कुछ भी आभास मुझे नहीं मिल पाता था—हालाँकि मैं मन ही मन उसके विषय में सब कुछ जानने के लिये बहुत उत्सुक रहा करता था। फ़िल्मी दुनिया में सम्मोहिनी की शोहरत दिन पर दिन अधिक से अधिक फैलती चली जाती थी, जिससे मेरा मन, न जाने क्यों, गर्व और प्रसन्नता से फूल उठता था। पर अपने इस गुप्त गर्व और प्रसन्नता की बात मैंने कभी अपने किसी घनिष्ठ मित्र के आगे भी प्रकट नहीं की।

एक दिन अख़बारों से मुझे मालूम हुआ कि सम्मोहिनी को लेकर एक नयी दुर्घटना घट गई है। ख़बर इस आशय की छपी थी कि सम्मोहिनी जब किसी एक ऐक्टर के साथ अपने स्टूडियो में अभिनय कर रही थी तो पीछे से किसी एक 'आततायी' व्यक्ति ने उस अभिनेता पर पिस्तौल से गोली चला दी, जिससे तत्काल उसकी मृत्यु हो गई। बाद में पुलिस की जाँच से मालूम हुआ कि जिस व्यक्ति ने उस अभिनेता की हत्या की थी वह सम्मोहिनी को चाहता था और उसने उससे विवाह का प्रस्ताव किया था, पर सम्मोहिनी ने उस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया था। साथ ही यह भी मालूम हुआ कि जिस अभिनेता की हत्या उस आततायी ने की थी उसके सम्बन्ध में उसे सन्देह था कि सम्मोहिनी उसे चाहती है।

इस हत्या का मामला जब अदालत से चला तो सम्मोहिनी ने अपने बयान में कहा कि हत्याकारी से उसकी मित्रता अवश्य थी, पर उसके साथ कभी किसी प्रकार का 'प्रेम-सम्बन्ध' उसका नहीं रहा, और वह बराबर उसे अपने भाई के समान मानती आई थी।

अंत में हत्याकारी को फाँसी की सज़ा हुई, और सम्मोहिनी की फ़िल्म कम्पनी बदस्तूर चलती रही, बल्कि पहले से अधिक सफलता के साथ चलने लगी। उस हत्याकाण्ड के बाद सम्मोहिनी की शोहरत में और चार चाँद लग गए।

समय बीतता चला गया, धीरे धीरे उस हत्याकाण्ड की बात लोग बहुत कुछ भूल गए। किसी दैवी चक्र से सम्मोहिनी की फ़िल्म कम्पनी असफलता की अँधेरी सीढ़ियों से होकर नीचे की ओर लुढ़कने लगी। अन्त में यहाँ तक नौबत पहुँची कि 'मोहन मूवीटोन कंपनी' का ख़ातमा हो गया और उसके साथ स्वयं सम्मोहिनी भी फ़िल्मी दुनिया से एक प्रकार से ग़ायब भी हो गई। सब समय की खूबी है, और ख़ास कर फ़िल्मिस्तान में तो 'सितारों' का इस तरह का उत्थान-पतन एक साधारण-सी बात है। पर मैं सम्मोहिनी को नहीं भूला। एक दिन के लिये भी नहीं, यद्यपि प्रायः दो वर्ष से मैंने उस की सूरत तक नहीं देखी थी।

एक दिन अकस्मात मुझे एक मित्र से,जिस का संबंध अख़बारी दुनिया से था, मालूम हुआ कि सम्मोहिनी ने विवाह कर लिया है, पहले तो यह ख़बर मुझे एक दम अप्रत्याशित और अविश्वसनीय सी लगी, पर बाद में जब तमाम अख़बारों में वह छप गई, तो अविश्वास करने का कोई कारण मुझे नहीं दिखाई दिया। जिस से उस का विवाह हुआ उस का केवल नाम सुना था, उस से मैं अपरिचित था। इस समाचार से मेरे मन के भीतर एक अव्यक्त अभिमान भरी मीठी टीस उठ कर रह गई।

इस के बाद प्रायः डेढ़ वर्ष का अर्सा और बीत गया। इस बीच

दुनिया इस बात को बिल्कुल भूल-सी गई थी कि सम्मोहिनी नाम की ऐक्ट्रेस कभी फिल्म-जगत में चमकती रही है। उसका अस्तित्व ही जैसे विलुप्त हो गया था, कोई भी सिनेमा-संबंधी पत्र उस की भूत कालीन कीर्ति की चर्चा किसी भी बहाने, भूल कर भी नहीं करता था। विवाह होने के बाद में उस के संबंध में कोई भी संवाद व्यक्तिगत रूप से भी मुझे कहीं से न मिला, पर मेरी स्मृति के ऊपर ज्ञान में या अज्ञान में, उस की छाया सब समय मँडराती-सी रहती थी।

डेढ़ वर्ष बाद एक दिन उसी अखबारी दुनिया के मित्र से, जिस ने मुझे सम्मोहिनी के विवाह का संवाद सुनाया था, मुझे मालूम हुआ कि सम्मोहिनी बंबई ही में, किंतु मरणासन्न अवस्था में पड़ी हुई है। इस समाचार से मैं इस क़दर विचलित हो उठा जिस का वर्णन मैं नहीं कर सकता, मुझे स्वयं अपने उस उद्वेग पर आश्चर्य हो रहा था, मान-अभिमान की सब बातें भूल कर मैं उससे मिलने के लिये बहुत बेचैन हो उठा, मैं ने अपने अखबारी मित्र से उस का ठिकाना पूछा, पर उस ने बताया कि वह स्वयं उस का ठिकाना जानने के लिये उत्सुक है, क्योंकि उस ने वह उड़ती हुई खबर किसी अनिश्चित ज़रिये से सुनी थी, और वह अपनी आँखों से सही-सही बातें मालूम कर के अखबारों में उस की रिपोर्ट छपवाना चाहता था। मैं ने उस से प्रायः गिड़गिड़ाते हुए प्रार्थना की कि वह दौड़-धूप कर के जल्दी से जल्दी सम्मोहिनी का ठीक-ठीक पता मालूम कर के मुझे बताने की कृपा करें।

मैं प्रतिदिन अत्यन्त उत्सुकता और आशंका के साथ अपने

मित्र की प्रतीक्षा करता रहता था–इस आशा से कि वह सम्मोहिनी के संबंध में कोई निश्चित समाचार मालूम कर के आवेगा, प्राय: एक सप्ताह बाद एक दिन उस ने मेरे पास आ कर कहा—"सम्मोहिनी के बीमार होने की खबर सच है, बीमारी दर असल चिंता-जनक है इस से भी बढ़ कर दु:ख की बात यह है कि उस का पति ऐन मौके पर उसे त्याग कर भाग कर कहीं चला गया है, इस की भी इतनी चिंता नहीं थी, पर सब से बड़े दुर्भाग्य की बात यह है कि उस के पास रुपया कुछ भी शेष नहीं रह गया था। जो कुछ नक़दी गहने उस के पास रहे होंगे वह सब उस का वह उठाईगीरा पति साफ़ कर के ले गया है, जो दो-चार गहने वह पहने थी उन्हें भी वह गुण्डा बक्स में संभाल कर रख देने का बहाना रच कर उस से माँग कर उड़ा ले गया है, केवल जो चूड़ियाँ वह हाथ में पहने थी, और एक अँगूठी के सिवा उस के पास और कुछ भी शेष नहीं है, इस का नतीजा यह हुआ है कि किसी डाक्टर का कोई इलाज नहीं हो पा रहा है, उस के दो नौकर भी भाग गए हैं, केवल एक नौकर अभी तक उस का काम कर रहा है, वह भी आधे मन से काम करता है और किसी भी दिन उस का गला घोंट कर, उस के शेष गहने और कपड़े-लत्ते उठा कर चंपत हो सकता है क्योंकि वह स्वयं पलंग पर उठ बैठ भी नहीं सकती।"

मैं आतंक से सिहर उठा। मेरे सारे शरीर के रोए सुई की नोक की तरह खड़े हो गए, कुछ अरसा तक मैं पत्थर की मूर्ति की तरह उस की ओर शून्य दृष्टि से ताकता रहा, उस के बाद अचानक जैसे किसी दु:स्वप्न से चौंकता हुआ बोल उठा—"पर वह रहती कहाँ

है, उस का ठिकाना जल्दी मुझे बताओ, जल्दी !"

उस ने गिरगाँव की एक अप्रसिद्ध गली का नाम और नंबर बताया, मैं ने कहा—"तुम्हें मेरे साथ चलना होगा, अभी ! मुझे गली का पता लगाने में देर लग सकती है।"

उसे अख़बारों में इस सनसनीखेज समाचार की रिपोर्ट भेजने की जल्दी हो रही थी, इस लिये वह टालमटूल करने लगा, पर मैं उस का हाथ पकड़ कर जबर्दस्ती उसे घसीट कर अपने साथ ले गया।

हम लोग एक डाक्टर को साथ ले कर गिरगाँव के एक गन्दे मुहल्ले की एक तंग और गन्दी गली के भीतर पहुँचे, मेरे अख़बारी मित्र ने हमें एक मकान के दरवाज़े पर ला कर खड़ा कर दिया, मकान काफ़ी बड़ा और ऊंचा था, जब हम लोग जीने से चढ़ कर ऊपर पहुँचे तो मालूम हुआ कि उस मकान में बहुत से महाराष्ट्रीय, गुजराती और मद्रासी परिवार किराये पर रहते हैं, मेरा मित्र हमें तीसरी मंज़िल पर ले गया, वहाँ पश्चिम की ओर एक कमरे के पास वह ठहर गया, बाहर से उस ने किवाड़ खटखटाया, कमरा खुला हुआ था, केवल एक अधमैला पर्दा दरवाज़े पर टंगा हुआ था, भीतर किसी के क्षीण स्वर में कराहने की आवाज़ स्पष्ट सुनाई दे रही थी, मैं ने अनुमान लगा लिया वह सम्मोहिनी की ही आवाज़ होगी, यद्यपि उस की जिस आवाज़ से मैं वर्षों से परिचित था उस से आज की आवाज़ का मेल रत्ती मात्र भी नहीं मिलता था, एक गुजराती नौकर ने पर्दा हटा कर अपनी सूरत दिखाई और कुछ कर्कश स्वर में मुझ से पूछा—"आप क्या चाहते हैं ?" मैं ने पूछा—सम्मोहिनी देवी यहीं रहती हैं ?"

"जी हाँ ! पर वह बहुत बीमार पड़ी हैं, उन से आप मिल नहीं सकते !"

"उन की बीमारी के कारण ही तो हम उन से मिलने आए हैं, डाक्टर भी हमारे साथ है, उन से जा कर बोल दो।" मैं ने अपना नाम जान बूझ कर नहीं बताया, नौकर भीतर चला गया।

थोड़ी देर बाद वह वापस आया और बोला—"आप लोग भीतर चले आइए।"

भीतर जा कर हम लोगों ने देखा प्रेतात्मा की तरह एक स्त्री किसी अज्ञात रोग से छटपटा रही है, कमरे के भीतर अँधेरा छाने लगा था, इसलिये मैं बारीकी से रोगिणी के मुख की पहचान नहीं कर पाया, पर रोगिणी ने मुझे पहचान लिया था, उस ने क्षीण कंठ से, कराहने के स्वर में कहा—"ओह, तुम ! और फिर रोने का एक अजीब टूटा-फूटा शब्द उस के मुँह से जैसे बरबस निकल पड़ा, मैं ने नौकर से बत्ती जलाने के लिये कहा, उस ने बिजली का बटन दबा दिया, बत्ती जलने पर मैं ने देखा कि सम्मोहिनी के रूप का सारा सम्मोहन तो नष्ट हो ही चुका था, साथ ही उस के मुख की आकृति अत्यंत वीभत्सता और भयावनी हो उठी थी। न जाने किस राक्षस रोग ने उस के भीतर का सारा सत्व चूस कर उस के मुख को जैसे झुलस दिया था, पर उस ऊपरी वीभत्सता के नीचे मुझे एक ऐसा सकरुण भाव छिपा हुआ दिखाई दिया जिस ने मेरे हृदय को द्रवित कर दिया, मेरे मुँह से बरबस निकल पड़ा— "सम्मोहिनी यह तुम्हें क्या हो गया ?"

सम्मोहिनी ने एक बार विवश कातर दृष्टि से मेरी ओर देखा,

उस के बाद चुपचाप टपाटप आँसू गिराती हुई वह मेरी ओर से मुँह फेर कर करवट बदल कर लेट गई।

मैं ने अपने मन की सारी पीड़ा को विष की घूँट की तरह पी कर, अपने उमड़ते हुए आँसुओं को बरबस दबाते हुए कहा—"सम्मोहिनी, डाक्टर साहब आए हैं, इन्हें परीक्षा करने दो।"

डाक्टर का नाम सुनते ही सम्मोहिनी ने फिर एक बार करवट बदली और बड़े गौर से डाक्टर की ओर देखने लगी, उस के बाद बिना कुछ कहे कराहने लगी, डाक्टर ने पहले उस की नब्ज़ देखी, उस के बाद सिर पर हाथ लगाया, और उस के बाद स्वर की नली से और भी अधिक महत्वपूर्ण बातें जानने की कोशिश की, जब यह काम भी हो गया तो उस ने नौकर से पूछ कर रोगिणी के बाहरी लक्षणों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी शुरू की, नौकर ने संकोच के साथ दो एक ऐसी बातों का संकेत दिया जिस से डाक्टर के हृदय में पहले से जमा हुआ संदेह विश्वास में बदल गया। उस ने कहा कि एक विशेषज्ञ डाक्टरनी को बुलाना होगा। उस ने एक विशेष डाक्टरनी का नाम और पता बताया। मैं यह प्रार्थना कर के कि मेरे आने तक वह रोगिणी को न छोड़ें, डाक्टरनी को बुलाने चला गया।

प्रायः आधे घंटे बाद पार्सी महिला डाक्टर को साथ ले कर मैं वापस चला आया, पार्सी महिला से डाक्टर ने अंगरेज़ी में बातें कर के सारी स्थिति समझाई और अपना सन्देह भी उस के आगे प्रकट किया।

वे लोग धीरे से पर स्पष्ट सुनाई देने वाली आवाज़ में बातें

कर रहे थे, उनकी बातों से मुझे मालूम हुआ कि सम्मोहनी के गर्भपात होने का सन्देह किया जाता है। डाक्टरनी ने हम सब लोगों को दूसरे कमरे में चले जाने का आदेश दिया। जब हम सब वहाँ से उठकर चले गये तो वह स्वभावतः रोगिणी की परीक्षा में लग गई होगी। प्रायः पन्द्रह मिनट के बाद उन्होंने हम लोगों को बुलाया, सूचित किया कि रोगिणी का गर्भपात हुआ है; तीन मास का गर्भ गिरा है। उन्होंने अपना यह भी सन्देह प्रकट किया कि किसी प्रकार की चोट लगने से गर्भ गिरा है। इतनी सब बातें सम्मोहिनी के सामने ही हुईं, पर सब कुछ सुनने पर भी वह एक शब्द भी न बोली, केवल बीच बीच में कराहती और करवटें बदलती रही। डाक्टरनी अपने 'बैग' में एक विशेष प्रकार के इञ्जेक्शन का सामान लेती आई थीं। डाक्टर की राय लेकर उसने इञ्जेक्शन दिया और उसी की राय लेने के बाद उसने दो दवाइयों का नुसखा कागज़ के एक टुकड़े में लिख दिया। मैंने दोनों को फ़ीस देकर विदा किया, और उसके बाद नौकर को हिदायतें देकर दवाएँ लाने स्वयं बाहर चला गया। दवाएँ लाने के बाद मैंने विधिपूर्वक, उपयुक्त अनुपान के साथ उपयुक्त समय पर रोगिणी को देना शुरू किया। घर में न दूध का उपयुक्त प्रबन्ध था न रोगिणी के भोजन का। मैं दोनों की उचित व्यवस्था करवा दी, और उसी दिन एक नौकरानी खोज कर उसे हर समय रोगिणी की सेवा में लगे रहने के लिए नियुक्त किया। डाक्टर और डाक्टरनी दोनों को मैंने दुबारा शाम को बुलाया और एक मेटर्निटी नर्स को भी प्रतिदिन एक

बार आकर रोगिणी की शिकायतें मालूम कर जाने के लिये नियुक्त करवा दिया। गरज़ यह कि परिचर्या में कोई भी बात अपनी तरफ़ से मैंने उठा न रखी।

फल यह हुआ कि प्रायः एक सप्ताह बाद सम्मोहिनी की हालत बहुत सुधर गई, और दूसरे हफ्ते के अन्त में वह एकदम चंगी हो गई। इन दो हफ्तों के भीतर उसके साथ मेरी कोई विशेष बात नहीं हुई। मेरे साधारण प्रश्नों का उत्तर वह साधारण ही ढंग से कुछ थोड़े से सङ्कोच के साथ दे दिया करती थी। उसने मुझसे यह भी न पूछा कि मैं इतने दिनों तक कहाँ था; और उसकी बीमारी का हाल और उसका पता मुझे कैसे मालूम हुआ। पर दो हफ्ते के बाद जब वह बिलकुल अच्छी हो गई, और पलंग से उठकर बाहर भीतर जाने लगी, तो एक दिन एकांत में मौक़ा पाकर मैं अचानक उससे यह प्रश्न कर बैठा—"तुम्हारे पति का कोई संवाद मिला ? इस समय वह हैं कहाँ ? बम्बई में या—?"

मैं मानता हूँ कि इस ढंग से मुझे प्रश्न नहीं करना चाहिये था। पर उससे भीतरी बातों की चर्चा चलाने का कोई दूसरा तरीक़ा उस समय मुझे सूझा नहीं। मैं अपना प्रश्न पूरा न कर पाया कि मैंने देखा कि सम्मोहिनी का चेहरा अचानक लुहार की भट्टी की दहकती हुई आग की तरह तमतमा उठा है। मैं अत्यन्त भीत हो उठा और मैंने चुप्पी साध ली। उसका इतने दिनों का सङ्कोच भाव जैसे पल में उस भट्टी की आँच से भाप बनकर उड़ गया। उसने अत्यन्त दृढ़ किंतु घृणा और आक्रोश

भरे शब्दों में कहा—"उस नीच और धूर्त दानव की चर्चा चला कर तुम जान-बूझकर मेरे मर्म के घाव पर चोट करना चाहते हो। पर जान लो उस घाव के साथ छेड़खानी करने से उसमें से ऐसी विषैली मवाद निकलेगी जिसका लेशमात्र भी चेप तुम्हारे सारे शरीर को, तुम्हारी आत्मा को कोढ़ से जलाये बिना न रहेगी।" यह कह कर उसने आँखों से आँसू गिराने शुरू कर दिए। मैं मर्माहत हो कर रह गया। अत्यन्त दीन-भाव से दोनों हाथ जोड़ते हुए मैंने करुणा प्रार्थना के स्वर में कहा—"सम्मोहिनी, अगर मेरे मुँह से कोई ग़लत बात निकल पड़ी हो तो मैं हृदय से तुम से क्षमा चाहता हूँ। मेरी इस बात का विश्वास करो कि मैंने जान-बूझ कर, तुम्हें चोट पहुँचाने के उद्देश्य से प्रश्न नहीं किया। मेरे स्वभाव का बहुत कुछ परिचय तुम्हें है। यह होते हुए भी अगर तुम यह सन्देह करो—"

मेरी बात बीच ही में काटकर अत्यंत उत्तेजित स्वर में वह बोल उठी—"हाँ, तुम्हारे स्वभाव से मैं बहुत अच्छी तरह परिचित हूँ, केवल तुम्हारे ही स्वभाव से नहीं, तुम्हारी जाति-बिरादरी के और भी बहुत से हीन मनोवृत्ति वाले पुरुषों के स्वभाव का परिचय मुझे मिल चुका है..."।

बिना बादल के वज्रपात से हतबुद्धि व्यक्ति की तरह मैं सन्न रह गया, वह कहती चली गई—"यह भूल—कर भी न समझना कि चूँकि तुम ने अपनी सेवा-टहल से मुझे मरने से बचाया, इस लिये मैं तुम्हारी कृतज्ञ रहूँगी, नहीं, तुम ने कृतज्ञता के योग्य कोई भी काम नहीं किया है। मैं खूब जानती हूँ कि तुम ने मुझे मरने से

क्यों बचाना चाहा, तुम्हारी त्याग और सेवा की भावना के नीचे मुझे स्वयं अपनी आँखों में लज्जित करने का उद्देश्य छिपा था।...

मैं ने विमूढ़ भाव से, अत्यंत घबराहट के स्वर में प्रायः फुस-फुसाते हुए कहा—"सम्मोहिनी! सम्मोहिनी! तुम्हें क्या हो गया है? तुम यह सब क्या कह रही हो?"

पर वह मेरी बात का कुछ भी खयाल न कर के अनमने भाव से मेरी ओर देखती हुई कहती चली गई—"अपने छोटे से जीवन में पुरुषों की घोर हीनता और स्वार्थ से भरी घृणित वृत्तियों के सम्बन्ध में जो अनुभव मुझे हुए हैं उन्होंने जीवन और जगत के सम्बन्ध में एक बिलकुल ही नयी दृष्टि दे दी है, मेरी आँखें इस हद तक खुल चुकी हैं कि भविष्य में मेरे लिये अब कोई खतरा शेष नहीं रह गया है, पर इतने दिनों तक कैसी भयंकर भूल ने मेरे मन को छा रखा था। मैं अब मानती हूँ कि सृष्टि-कर्ता ने मेरे हृदय की भूल भावनाओं को ही एक पैदाइशी भूल की नींव पर खड़ा कर रखा था, जीवन में मैं ने कोई भाई अपनी माँ की कोख से नहीं पाया, फल यह हुआ कि बचपन में अपने साथ की दूसरी लड़कियों को अपने भाइयों पर स्नेह बरसाते देख कर मेरी यह सहज आकांक्षा मचल-मचल कर रह जाती थी, मैं अपनी सहेलियों के छोटे-छोटे, प्यारे-प्यारे भाइयों पर अपने हृदय में उथला हुआ सारा स्नेह उँड़ेल देने के लिये सब समय विकल रहती थी, पर अपने भीतर के किसी संकोच के कारण ऐसा करने से रह जाती थी, जब मैं बड़ी हुई तो अपने उस विकृत संकोच पर मैं ने ऐसी ज़बर्दस्ती विजय पाई कि मेरा निस्संकोच भाव दूसरी चरम और अस्वाभाविक

स्थिति पर पहुँच गया। मैं अपने से छोटे (या कुछ बड़े) किसी भी सुंदर और सुशील लड़के को देखती तो उसे अपने भाई की तरह प्यार करने के लिये अधीर हो उठती, स्त्री और पुरुष के प्रेम-सम्बन्ध के इसी रूप को मैं सहज स्वाभाविक और सुंदर समझती थी। जब मैं सयानी हो गई और अपनी हमजोली की लड़कियों से और उपन्यासों और कविता की पुस्तकों से स्त्री-पुरुष का प्रेम-सम्बन्ध का दूसरे रूप का ज्ञान हो गया, तो भी मेरे हृदय में प्रेम का वही रूप—भाई—बहन के पारस्परिक स्नेह का भाव—ही घर किये रहा। निश्चय ही यह मेरे स्वभाव की एक विचित्रता थी। पर विचित्रता हो चाहे कुछ हो, वह मेरे भीतर बड़े गहरे में अपनी जड़ जमाए थी। जब लखनऊ में तुम्हें मेरा परिचय हुआ, और तुमने बड़ी भावुकता के साथ अपनी कविता पढ़ी, और बड़े ही स्नेह और सम्मान के साथ तुम मेरे साथ पेश आए, तो मेरा भ्रातृ-प्रेम पूरे वेग से उमड़ उठा। तुमसे मैंने नहीं बताया कि जिस दिन उस कविता के ज़रिये से तुम्हारे हृदय की भावुकता का बांध टूट पड़ा, उसी दिन रात के समय मैं होटलवाले अपने कमरे में पलंग पर लेटे-लेटे खूब रोई। बड़े सुख के वे आँसू थे जो फ़िल्मी दुनिया के हृदयहीन और विलासी वातावरण में मेरे लिये दुर्लभ बने हुए थे। उसके बाद मैं जो तुम्हें बलपूर्वक अपने साथ बंबई भगा ले गई, वह भी मेरे अतृप्त भ्रातृ-प्रेम की प्रतिक्रिया ही थी। पर तुमने मेरे उस मनोभाव को बिलकुल ही उलटा समझा। कामुकता के सिवा स्त्री-पुरुष के बीच का कोई

दूसरा संबंध तुम्हारे लंपट पुरुष-जाति को मान्य नहीं है। तुमने जब विवाह का प्रस्ताव किया तो मैं स्वभावतः आतंकित हो उठी। उसके बाद-गोपीनाथ से जब मेरा परिचय हुआ तो उसके प्रति भी मेरे मन में तुम्हारी ही तरह स्नेह-भावना जाग उठी। मैं इस हद तक भोली निकली, हालाँकि कोई भी धूर्त पुरुष मेरे इस भोले पन पर अविश्वास की हँसी हँसेगा—कि तुम्हारे संसर्ग से जो तजुर्बा मुझे हुआ उससे कोई शिक्षा मैं न ले सकी और गोपीनाथ को मुक्त हृदय से अपना स्नेह देती रही। अंत में जब मुझे मालूम हुआ कि वह तुम्हारी ही तरह मेरे स्नेह का कुछ दूसरा ही अर्थ लगाये बैठा था तो बहुत देर हो चुकी थी। उस भूल का निराकरण उस आत्महत्या से हुआ। उस दुर्घटना से मैं बहुत ही विचलित हुई। पर क्रूर नियति मेरी मति को बार-बार इस क़दर अचेत बना देती थी कि मैं पिछली दुर्घटना को भूलकर उस अनुभव से कोई लाभ न उठाकर किसी दूसरे व्यक्ति के साथ ठीक उसी प्रकार की भूल फिर कर बैठती थी। जब और भी दो-एक दुर्घटनाएँ मेरी इस अनोखी और भोली (हाँ भोली ! मैं सच कहती हूँ) स्नेह-भावना के कारण हुईं तो अंत में मेरी आँखें कुछ खुलीं। इसलिये जब अंतिम व्यक्ति (हाँलाकि उस नराधम और नारकीय जीव का उल्लेख किसी भी रूप में करना मेरे लिये शूल की घातक पीड़ा से अधिक कष्टदायी है) जब मेरे हृदय का उसी कोमल और करुण भावना का अधिकारी बनने के बाद एक दिन मुझसे विवाह का प्रस्ताव कर बैठा तो मैंने केवल इस डर से प्रस्ताव को

स्वीकार कर लिया कि कहीं वह भी कोई आत्मघाती काण्ड न कर बैठे। उसका फल मुझे यह मिला कि—पर तुम निश्चय ही उसकी करतूत से परिचित हो चुके हो। मुझे किस दशा में और कैसी स्थिति में छोड़कर वह चला गया है, यह बात तुमसे छिपी नहीं है। पर जब मैं उस पिशाच के बारे में सोचती हूँ तो मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं होता, कारण यह है कि मैं इतने वर्षों के अनुभव के बाद एक निश्चित परिणाम पर पहुँच गई हूँ—वह यह कि प्रत्येक पुरुष, चाहे वह कितना ही कवि, लेखक, समाज सुधारक या और किसी क्षेत्र का बड़ा आदमी क्यों न हो, स्त्री के संबंध में उसकी श्वान-वृत्ति ही अधिक उमड़ी हुई रहती है। सुकुमार वृत्तियाँ भी कभी-कभी उसके व्यवहार में प्रकट अवश्य होती हैं, पर यह श्वान-वृत्ति उसकी सब सुकुमार भावनाओं को दबाकर उस पर आसानी से विजय पा जाती है। चूँकि अब मैं यह बात भली भाँति समझ गई हूँ, इसलिये मुझे अब किसी भी बात का डर नहीं रह गया है। तुम मेरे ख़िलाफ़ चाहे कैसा ही भयंकर जाल क्यों न रचना चाहो, मेरा कुछ भी बिगाड़ सकने की शक्ति अब तुम में नहीं है। कोई पुरुष अब मेरे कारण चाहे आत्महत्या करे, चाहे किसी का खून चाहे स्वयं मुझे ही जान से मार डालने पर आमादा क्यों न हो जाय, मैं अब किसी भी बात से, किसी भी दुर्घटना से तनिक भी विचलित नहीं होऊँगी। मैं पुरुष-जाति की मूल भावनाओं से सदा के लिये परिचित हो चुकी हूँ। इसलिये नमस्ते! यदि तुमने मेरी परिचर्या करके मुझे मरने से

बचाकर मेरे साथ फिर एक बार किसी प्रकार का घनिष्ठ रूपसे संपर्क स्थापित करने का इरादा किया हो तो चुपचाप अभी यहाँ से चले जाओ, नहीं तो तुम्हारे लिये इस बात का नतीजा अच्छा नहीं होगा। मैं पहले ही कह चुकी हूँ, मैं इस बात के लिये बिलकुल ही कृतज्ञ नहीं हो सकती कि तुमने मुझ मरती हुई को जिलाया है। तुम्हारी आँखें मुझे बता रही हैं कि तुमने निपट स्वार्थ की भावना से मुझे लज्जित करके अपने वश में करने और अपनी विकृत आकांक्षा की पूर्ति के उद्देश्य से मेरी सेवा-टहल की है। ऐसी सेवा के लिये कृतज्ञ होना नादानी है। इसलिये नमस्ते! तुम अपने रास्ते जाओ और मैं अपने।

यह कह कर वह अचानक उठ खड़ी हुई और भीतर के कमरे में जाकर भीतर से उसे चिटखनी लगा दी। मैं भौंचक्का-सा देखता ही रह गया। फिर भी प्रायः दो घण्टे तक मैं बाहर इस आशा में बैठा रहा कि उत्तेजना शांत होने पर वह बाहर निकले और मैं एक बार—अंतिम बार उसे समझा-बुझा कर अपने मन की सच्ची हालत उसे समझा दूँ। पर वह बाहर निकली ही नहीं। अंत में तंग आकर काफ़ी खीझकर वहाँ से चल दिया। उस घटना ने मेरे हृदय को इस कदर आतंकित कर दिया कि उसके कुछ ही दिन बाद मैं बंबई छोड़कर युक्तप्रान्त चला आया। प्रायः एक वर्ष बाद मैंने सुना कि वह फिर किसी एक फ़िल्म कंपनी में काम करने लगी है।

× × ×

सूट-बूट धारी सज्जन ने एक दबी हुई आह के साथ अपनी कहानी समाप्त की। खद्दरधारी सज्जन बड़ी तन्मयता से उसकी कहानी सुन रहे थे। कहानी समाप्त होने पर वह दीवार से पीठ हटाकर पाँव फैलाकर पहले की अपेक्षा कुछ अधिक आराम के साथ बैठ गए, और कुछ देर तक किसी एक विशेष विचार में मग्न हो रहे। उसके बाद बोले—"कुछ स्त्रियाँ बड़े ही विचित्र स्वभाव की होती हैं।"

"और कुछ पुरुष भी!" कहकर सूटधारी सज्जन ने एक अनोखी सांकेतिक मुस्कान से खद्दरधारी महाशय की ओर देखा, और फिर जेब में हाथ डालकर पाकिट से उसने एक सिगरेट निकाली और उसे जलाकर पीने लगा। कुछ मुद्दत बाद वह बोला—"पर आज गाड़ी इतनी लेट क्यों है! मैं ज़रा जाकर पूछता हूँ कि बात क्या है।" यह कहकर वह वहाँ से उठकर बाहर प्लेटफ़ार्म पर चला गया।

———

रोमांटिक छाया

केशवप्रसाद स्नानादि क्रियाओं से निवृत्त हो कर एकान्त मन से, भावमग्न अवस्था में, यह स्तोत्र पढ़ रहा था—'भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी !' इतने में नौकर ने आकर कहा—'बाहर एक बाबू आपसे मिलने आए हैं ।'

केशवप्रसाद भक्ति-भाव में ऐसा तन्मय हो रहा था कि उस में विघ्न पड़ने से उसे तनिक भी प्रसन्नता नहीं हुई । उसकी इच्छा हुई कि नौकर से कह दे—'कह दो कि बाबू अभी नहीं मिल सकते, फिर किसी समय आना ।' पर उत्सुकता ने जोर बाँधा। उसने बाहर के कमरे में आ कर देखा कि प्रायः सत्ताईस-अट्ठाईस वर्ष की अवस्था का एक युवक एक मैली-सी चादर लपेटे हुए

और प्राय: वैसी ही धोती पहने, कुर्सी पर बैठा हुआ उस का इन्तज़ार कर रहा था। उसके सिर पर टोपी नहीं थी और बड़े-बड़े रूखे बाल सिर के दोनों ओर बिखरे पड़े थे। चेहरा सूखा हुआ था और आँखें भीतर की ओर धँसी हुई थीं, जिनसे म्लान मुस्कान की एक उदास ज्योति टिमटिमा रही थी। केशव ने विस्मय-भरी आँखों से उसे देखा और उसके सामनेवाली कुर्सी पर बैठ गया।

'आप कहाँ से तशरीफ़ लाए हैं ?'

'सहारनपुर से !'

'आपका शुभनाम ?'

आगन्तुक ने एक व्याकुल सलज्ज मुस्कान के साथ कहा—'क्या मुझे अभी तक नहीं पहचाना ? क्या सचमुच मैं इतना बदल गया हूँ ?'

केशव ने इस बार और अधिक आश्चर्य के साथ, बड़े ग़ौर से आगन्तुक की ओर देखा और कुछ क्षण बाद उसने पहचान लिया। पहचानते ही उसे नवागत व्यक्ति की आकृति बहुत छोटी, प्राय: एक बीस वर्ष के लड़के की सी लगी। वह चौंक पड़ा और कुर्सी से प्राय: उचकता हुआ बोला—'बालमुकुन्द ! तुम इस वेष में ? तुम्हारा यह हाल ! आश्चर्य है !'

उसका आश्चर्य देख कर बालमुकुन्द उसी सलज्ज, म्लान मुस्कान में, नीली आँखों से उसकी ओर देखने लगा। जब वह तनिक भी मुस्कराने की चेष्टा करता, तो उसकी आँखों के आस-

पास से होकर गालों के नीचे तक झुर्रियाँ पड़ जाती थीं।

केशव ने पूछा—'इतने दिनों तक कहाँ रहे ? आज प्राय: आठ साल से तुम्हारी कोई खबर नहीं मिली।'

'यों ही आवारा फिरा करता था।' अभी तक वही संकोच भरी करुण मुस्कान उसके रूखे चेहरे में वर्तमान थी। केशव उसके सम्बन्ध में कई बातें पूछने के लिए उत्कण्ठित था। पर; जब उसने देखा कि वह कुछ भी बताने के लिये इच्छुक नहीं है, तो वह चुप रह गया।

'कहाँ ठहरे हो ?'

अधिक लज्जित हो कर बालमुकुन्द बोला—'स्टेशन से सीधे यहाँ आ रहा हूँ।'

'सामान कहाँ है ?'

'नौकर उठा ले गया है।'

केशव ने नौकर को पुकार कर चाय तैयार करने के लिए कहा। चाय पी कर स्नानादि से निवृत्त हो कर जब वह आया, तो उसके शरीर में फिर उसी ढंग की मैली और पुरानी धोती देख कर केशव को दुःख हुआ। उसने अपनी एक नयी धोती निकाल कर उसे दी। उसके ऑफ़िस का समय हो चला था। उसने अपने और बालमुकुन्द के लिये बाहर ही भोजन मँगाया।

खा पी कर जब केशव ऑफिस जाने को तैयार हुआ तो उसने बालमुकुन्द से कहा—'मैं जाता हूँ, पाँच बजे वापस आऊँगा। तुम तब तक आराम करना। अगर किसी ख़ास चीज़ की ज़रूरत

पड़, तो भीतर अपनी भाभी जी को सूचित कर देना ।'

उसने कुछ उदासी और कुछ गंभीरता के साथ कहा—'अच्छा !' उसके इस संक्षिप्त उत्तर में एक ऐसी मार्मिक वेदना भरी थी, कि केशव सहम गया। कुछ देर तक चुप रह कर उसने पूछा—'अगर तुम्हें किसी बात का कष्ट हो तो कहो। मैं भरसक प्रबन्ध कर दूँगा।'

बालमुकुन्द ने पहले की ही तरह उदासीनता के साथ कहा—'नहीं, नहीं, कोई कष्ट नहीं।'

कुछ देर ठहरने के बाद केशव जाने ही को था कि बालमुकुन्द अचानक उठ खड़ा हुआ और व्याकुल दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ बोला—'मुझे पाँच रुपया देते जाना !'

केशव को उसकी इस आकस्मिक याचना से दुख भी हुआ और हँसी भी आई। उसने चुपचाप जेब से पाँच रुपये निकाल कर उसके हाथ में रख दिए और चलता बना।

शाम को जब केशव ऑफिस से लौट कर घर आया, तो बालमुकुन्द वहाँ नहीं था। पूछने पर मालूम हुआ कि वह केशव के आफ़िस जाने के कुछ ही देर बाद बाहर निकल गया था, तब से अभी तक नहीं लौटा।

रात को जब घर के सब लोग खा-पी कर सोने की तैयारी कर रहे थे, तो ख़बर मिली कि बालमुकुन्द नशे की हालत में वापस आया है। केशव उसके पास गया, तो उसकी दुर्दशा देख कर बहुत दुःखित हुआ। उसकी आँखें चढ़ी हुई थीं और बोलने

में ज़बान लड़खड़ा रही थी। केशव को देखते ही वह उसके गले से लिपट गया और इस ढंग से बोलने लगा; जैसे स्टेज में अभिनय कर रहा हो —'मे मेरे सबसे प्-प्यारे और सब से पु-पुराने मि-मित्र ! आज तुम से मि-मिल कर कैसा अपार आनन्द हुआ है, मैं-मैं कह नहीं सकता !'

उसके मुँह से उत्कट दुर्गन्ध आ रही थी, जिसके मारे केशव का माथा भिन्नाने और जी मचलाने लगा। किसी तरह अपने को उस शराबी मित्र की बाँहों से छुड़ा कर केशव धमकी के रूप में बोला—'ये सब मित्रता-वित्रता की बातें रहने दो ! ठीक से बैठ जाओ ! तुमने अभी तक खाना नहीं खाया है। बदलू ! खाना ले आओ।'

'न-न ! मैं-मैं ख-खाना खा कर आया हूँ। प-पर तु-तुम ना-नाराज़ हो गए ?'

केशव को बेतरह क्रोध आ रहा था, और उस दयनीय व्यक्ति की हालत पर दुःख भी हो रहा था। किसी तरह अपने को सँभाल कर उसके लिये पलँग का प्रबन्ध करके उसने बदलू से कह दिया कि रात को वह बाबू के ही कमरे में सोए और उसकी देख-रेख करता रहे। इसके बाद वह भीतर चला गया।

रात को बहुत देर तक केशव को नींद न आई।

वह सोचने लगा कि क्या यह वही बालमुकुन्द है, जिसे वह बचपन में उसके शील-स्वभाव की स्निग्धता और माधुर्य के कारण बहुत चाहता था और स्कूल तथा कालेज में जिसकी अपूर्व

बुद्धिमत्ता और अनुकरणीय सच्चरित्रता के कारण उसे भावी नव-युवकों के लिये आदर्श रूप मानता था। तब उसके सुन्दर गोरे-उजले मुखमण्डल से कैसा तेज़ झलकता था। कालेज में वह अपने मिलनसार स्वभाव और प्रीतिपूर्ण व्यवहार के कारण बड़ा लोकप्रिय हो उठा था और इलाहाबाद का सारा साहित्य-समाज उसकी ललित और प्रसाद-पूर्ण कविताएँ सुनने के लिए लालायित रहता था। उसके सिर पर बड़े-बड़े चिकने और कुछ-कुछ घुँघराले बाल लहराया करते थे और प्रथम बार के दर्शन से ही उसके सम्बन्ध में कह सकता था कि वह कवि है। केशव को पूरी आशा थी कि वह एक दिन शैली या टैगोर की तरह अवश्य ही संसार में ख्याति प्राप्त करेगा और अपने कवि-मित्र की प्रतिभा पर उसे बड़ा गर्व था। इसलिये आज उसकी जो उसने दुर्गति देखी, वह आतंक उत्पन्न करने वाली थी। इतने थोड़े अर्से में एक विकासो-न्मुख सुन्दर पुष्प मुर्झा कर सड़ने लगा! मानव-जीवन के इस 'मिथ्या मायामोहावेश' पर विचार करते करते वह सो गया।

दूसरे दिन बालमुकुन्द कुछ देर से उठा। केशव जब उसके पास गया, तो वह अपराधी की तरह संकोच-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा। केशव ने रातवाली घटना का कोई उल्लेख नहीं किया और उसकी तबीयत की हालत पूछ कर वहाँ से चला गया।

रात को बालमुकुन्द फिर नशे की हालत में वापस आया सब प्रकार का संकोच त्याग कर उन्मुक्त रूप से काव्य-मयी भाषा में केशव के साथ 'प्रेमालाप' करने लगा। कभी उसका हाथ पकड़

कर कहता—'तुम मेरे परम स्नेही मित्र हो !' कभी उसके कंधे पर हाथ रख कर कहता—'परम स्नेही मित्र ही जीवन में परम शत्रु सिद्ध होते हैं—यह नेचर का लॉ है, विधाता का विकृत विधान है !' केशव उसकी इन सब बातों को एक शराबी का प्रलाप समझ कर म्लान मुस्कान मुख पर झलका कर चुप रह जाता था।

लगातार तीन-चार दिन तक बालमुकुन्द का यही हाल रहा। दिन में वह अत्यन्त, शान्त, शिष्ट और विनम्र बन जाता था और रात में शराब के प्रभाव से वह बड़ा ही बातूनी बन जाता था। तारीफ़ की बात यही थी कि शराब के लिये पैसे वह रोज़ केशव से दफ़्तर जाने के पहले माँग लेता था। उसके बाद दिन भर ग़ायब रहता और रात को...।

उस दिन रविवार था। केशव दिन-भर बालमुकुन्द को अपने पास पकड़े रहा और शाम होते ही वह उसे हवाख़ोरी के बहाने दूर गंगा के किनारे एक एकान्त स्थान में ले गया। दोनों कुछ देर तक मौन भाव से बैठे रहे और वर्षा के कारण यौवन की उमंग से इठलाती हुई गंगा की लहरों के पागल उच्छ्वासों से सिहरते-से रहे। उसके बाद अचानक केशव बोल उठा—'देखो बालमुकुन्द, तुम्हारी हालत देख कर मुझे बहुत दुःख हुआ है। मैं अपने दिल की हालत तुम्हें ठीक बता नहीं सकता......सच बताओ, तुम्हारा यह पतन कैसे सम्भव हुआ ?'

मुकुन्द मुस्कराने लगा। पर, आज उसकी मुस्कान में लज्जा या संकोच का नाम नहीं था। अपने छुटपन की स्वाभाविक

ढिठाई से उसने कहा—'क्या सचमुच जानना चाहते हो ? अच्छा तो सुनो। पर ; तुम शायद ठीक समझ नहीं पाओगे, कारण यह है कि तुम बड़े नीतिनिष्ठ और आदर्श गृहस्थ हो ; लेकिन भावुक प्रेमिक तुम कभी नहीं रहे हो। मैं यह नहीं कहना चाहता कि तुम भाभी जी को नहीं चाहते। पर; विवाह के अधिकार से प्राप्त सहज, शान्त प्रेम में वह उन्माद, वह तीक्ष्णता, वह बेचैनी कहाँ जिसका अनुभव मुझे आठ वर्ष पहले हुआ था ! और; जिसके कारण मैं अभी तक प्रति दिन, प्रतिपल तृषाग्नि की-सी अदृश्य आँच में भीतर ही भीतर जल रहा हूँ ! हमारे इस अभागे देश में प्रेम का नाम तो बहुत लोगों ने सुना है और प्रेम के गीत भी हर सिनेमा-हाउस में नित्य सुनने में आते हैं; पर लाखों में दो-चार आदमी भी उसके मर्म को छेद डालनेवाली पीड़ा की वास्तविकता से परिचित हैं या नहीं, इसमें सन्देह है। तुम हँसते हो ? हँसो, पर इस हँसी से तुम किसी सच्चे प्रेमी की पीड़ा को तुच्छ नहीं कर सकते।

'मेरी प्रेमपात्री के सम्बन्ध में जानने के लिये तुम अवश्य ही उत्सुक होगे। तुमसे छिपाने की कोई बात नहीं है, फिर भी मैं उसका नाम अभी तुम्हें नहीं बताऊँगा ; क्योंकि...पर पहले मेरी बात पूरी तरह सुन लो। जब मैंने पहले-पहल उसे देखा; तब वह सम्भवतः सोलहवाँ वर्ष पार कर चुकी होगी। कुछ भी हो, तब उसका विवाह नहीं हुआ था। वह एक 'कल्चर्ड फेमेली' की लड़की थी। सुशिक्षिता होने पर भी गृहकार्य में उसकी दक्षता

अपूर्व थी। यदि मैं उसे सुन्दरी कहूँ, तो विशेषज्ञ मेरी बात मानने के लिये तैयार न होंगे। क्योंकि; क़द में वह छोटी थी, मुँह उसका गोल था और आँखें तनी हुई होने पर भी प्राय: सब समय अध-खुली-सी दिखाई देती थीं। दीर्घ अनुभव से मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि छोटी आँखें ध्यान-मग्न योगियों की निमीलित आँखों की तरह जिस रहस्यमय भीतरी सौन्दर्य का परिचय देती हैं, वह निराला होता है। मैंने जीवन में उसे कभी हँसते न देखा और शायद ही वह कभी प्रकट रूप से रोई होगी। सहज उदासीनता, मन्द-मधुर, पवित्र और स्थिर भाव प्रतिपल उसके मुखमण्डल में व्यक्त रहता था। इसलिये उसके प्रथम दर्शन से ही मेरे मन में अनन्त की जो छाप पड़ गई, वह वज्ररेखा की तरह किसी युग में किसी जन्म में नहीं मिट सकती, यह बात मैं उसी दम समझ गया था।

ख़ैर। मैं कह नहीं सकता कि वह मुझे चाहती थी या नहीं! पर; मैं उसके पाँवों की धूलि के लिये भी लालायित रहता था कि मिले तो कुछ सिर पर चढ़ाऊँ और कुछ स्मृति के बतौर बकस में बन्द रखूँ।

'मेरी बड़ी इच्छा रहते हुए भी उसके साथ मेरा विवाह नहीं हो पाया। इस बात से मुझे गहरा धक्का अवश्य पहुँचा, पर पीछे मैं सँभल गया और यह सोच कर मुझे आनन्द मिला कि जिसके साथ उसका विवाह हुआ है, वह मुझसे भी योग्य है और उसके साथ रह कर वह सुखमय जीवन बितावेगी। पर; जो वज्र-चिह्न

मेरे मन में अंकित हो गया था, वह प्रतिपल मुझे उसकी याद दिला कर एक ओर निर्मम पीड़ा पहुँचाता था और दूसरी ओर एक निराली ही पुलक-भावना का अनुभव कराता था। फिर भी मैं बरबस उसे भूलने का प्रयत्न करने लगा। दो साल तक गेरुआ वस्त्र पहन कर वैराग्य धारण करके विन्ध्याचल की खोहों में छिपा रहा। पर ; उसे भूलने के बजाय उसकी स्मृति तीक्ष्ण से तीक्ष्णतर होती चली गई। मैंने वापस आकर सार्वजनिक क्षेत्र में बड़े उत्साह के साथ काम करना शुरू किया, केवल इस ख़्याल से कि उसे भूल सकूँ। मेरा ऊपरी मन राजनीतिक कार्रवाइयों में व्यस्त रहने पर अन्तर्मन पल-भर के लिये भी उसे नहीं भुला पाता था। यहाँ तक कि जब मैं प्लेटफ़ार्म पर खड़ा हो कर अपनी वाग्धारा में जनता को बहाये लिए जाता था, तो उस समय भी सारी जनता छाया की तरह मेरी आँखों से विलीन हो जाती थी और जिस मूर्ति को लक्ष्य करके मैं भाषण देता था, उसे मेरे अन्तर्यामी के सिवा और कोई नहीं देख पाता था।

भूत की तरह वह छाया जहाँ एक तरफ़ मेरी आत्मा को किसी अज्ञात रहस्यमय लोक की ओर प्रेरित करती थी, वहाँ दूसरी ओर हमें अत्यन्त शंकित और परास्त कर देती थी। आत्मा की यह थकावट क्या चीज़ है और कितनी भयंकर है; यह बात मैं किसी प्रकार भी तुम्हें समझा नहीं पाऊँगा। जो भी हो, उससे मुक्ति पाने के लिये मैंने पीना शुरू कर दिया। पीने की इस लत ने मुझे निकम्मा बना दिया। धीरे-धीरे मन में एक ऐसी जड़ता छाने

लगी कि सार्वजनिक कामों में भी मुझे तनिक भी दिलचस्पी नहीं रह गई, फल यह हुआ कि मैं बन गया नम्बरी निठल्ला। दिन-भर विचित्र प्रकार के दिवा-स्वप्न और रात-भर दुःस्वप्न देखते रहने के सिवा मेरे लिये जैसे जीवन का और कोई लक्ष्य ही नहीं रह गया था! और, इस लक्ष्य को बनाए रखने के लिये मुझे 'पीने' के लिये प्रतिदिन की सुविधा की परम आवश्यकता थी। पर, बेकारी —जिसका एक कारण मेरा निकम्मापन था—मुझे यह सुविधा नहीं दे सकती थी, इसलिये मैंने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक विचित्र ही तरीका अख्तियार करना शुरू किया। मैं कुछ विशेष-विशेष व्यक्तियों के पास उनके कुछ ऐसे मित्रों के नाम की जाली चिट्ठियाँ ले जाता, जिनका वे सम्मान करते थे; पर जिनके हस्ताक्षरों से भली भाँति परिचित नहीं रहते थे। उन चिट्ठियों में लिखा रहता,—पत्र-वाहक एक शरीफ़ घराने का योग्य और सुशिक्षित लड़का है और इस समय अर्थ-कष्ट से पीड़ित है, इसलिये उसकी कुछ सहायता कर सकें, तो अवश्य कर दीजियेगा।' इस उपाय में मुझे अक्सर सफलता मिल जाती और मैं शराब पी पी कर कभी किसी होटल में पड़ा रहता, कभी किसी रेलवे स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर या वेटिंग रूप में। नौबत यहाँ तक पहुँची कि मैंने रेलवे स्टेशन में दो-एक यात्रियों की गाँठ तक काट ली। पर यह उपाय अधिक समय तक न चल सका और एक दिन मैं असावधानी के कारण पुलिस के चंगुल में आ गया। साल-भर की क़ैद भुगत कर मैं सीधे तुम्हारे ही पास पहुँचा हूँ। मैं जानता हूँ कि

में एक निकम्मा रोमांसवादी हूँ और जीवन के बहुत ही गलत दृष्टिकोण को मैंने अपनाया है। जेल में विशेष रूप से यह कड़वा सत्य स्पष्ट रूप में मेरे सामने आया। पर; यह सब होते हुए भी वह आप्तोपदेश मेरे किसी काम न आ सका और मैं अभी तक भूतमाया की तरह उस रोमांटिक छाया को नहीं भूल सका हूँ।'

* * *

दो-तीन दिन बाद बालमुकुन्द केशव के यहाँ से चला गया। उसके प्रायः एक सप्ताह बाद सहारनपुर से केशव के पास एक चिट्ठी आई, जिसमें अन्य बातों के साथ एक बात यह भी लिखी थी कि जिस 'छाया' का ज़िक्र उसने उस दिन किया था वह और कोई नहीं, केशव की स्त्री लीला है! पत्र पढ़ कर केशव के दिमाग़ में सन्नाटा छा गया। कुछ सोच-समझ के बाद उसने वह पत्र अपनी स्त्री के हाथ में दे दिया। पत्र पढ़ते-पढ़ते लीला की आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगे। बालमुकुन्द के पत्र ने केशव को इतना विचलित नहीं किया, जितना लीला के उन आँसुओं ने किया। उन आँसुओं ने उसके जीवन का एक बड़ा भारी भ्रम जैसे धो डाला। उसकी शांत गृहस्थी की फुलवारी में पहली बार एक घातक कीट घुस आया। वह सोचने लगा—'एक नम्बरी लम्पट, गिरहकट और बदमाश के लिये लीला ने ये जो आँसू बहाए हैं, उनका आदि स्रोत कहाँ पर है और अन्त कहाँ पर होगा?'

बालमुकुन्द की पतित दशा के प्रति उसके मन में जो सहानुभूति उमड़ उठी थी, लीला के आँसुओं ने न जाने किस रहस्यमय रासायनिक क्रिया से उसे घोर घृणा में परिणत कर दिया।

प्रेम और घृणा

आज सुबह से ही नीलिमा बीबी का चित्त प्रसन्न नहीं था। उनके व्यवहार से एक अनोखी-सी खीझ, बातचीत से एक विचित्र-सी झुँझलाहट प्रकट होती थी। जब मैं उनके पास सुबह की चाय लेकर पहुँचा, तो उन्होंने टोस्टों के ऊपर नज़र डालते ही तीखे स्वर में कहा—"हमारे यहाँ काम करते हुए तुम्हें छः महीने हो गए पर अभी तक तुम इतना भी नहीं सीख पाए कि टोस्ट किस तरह तैयार किया जाता है। जी चाहता है इन जले हुए टोस्टों को तुम्हारे सिर पर दे मारूँ!" यह कहते ही उन्होंने चारों टोस्ट प्लेट पर से उठाकर फर्राटे के साथ बाहर बरामदे की ओर फेंक दिए। मैं मन-ही-मन भगवान को इस बात के लिये धन्यवाद देता हुआ कि

उन्होंने उन टोस्टों को मेरे सिर पर नहीं पटका, चुपचाप, मिलिटरी 'अटेन्शन' के साथ, अत्यन्त गंभीर मुद्रा बनाए पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा रहा।

उसके बाद नीलिमा बीबी ने आमलेट पर कोप-दृष्टि डालते हुए कहा—"आमलेट भी जला दिया है!" और तश्तरी को उठाकर नाक के पास ले गईं। आज यह एक दम नयी बात थी। इसके पहले उन्होंने कभी आमलेट पर इस प्रकार अपनी घ्राणेन्द्रिय के निकट संसर्ग में ले जाने की कृपा नहीं की थी। तनिक सूँघते ही वह बोलीं—"महक रहा है, बासी अंडों से तैयार किया गया है।" यह कह कर उन्होंने तश्तरी को उठाकर 'पटाक' शब्द के साथ ट्रे पर रखा, जिसके फल-स्वरूप उस प्लेट का एक टुकड़ा टूटकर अलग हो गया। उसी खीझ के साथ उन्होंने 'टी-पाट' से प्याले में चाय उड़ेली। दुर्भाग्य से चाय की दो पत्तियाँ, जो छलनी से छनने के बाद भी 'पाट' में रह गई थीं, पहली ही बार में प्याले के ऊपर तैरने लगीं।

देखते ही मेरा कलेजा जैसे भीतर को धँस गया।

"मुझे क्या कोई घास खाने वाला जानवर समझ लिया है? तुम क्या यह चाहते हो कि मैं चाय पीती हुई इन पत्तों को भी खा जाऊँ?"

यह कहती हुई वह मेरी ओर नहीं देख रही थीं। वह आधी दृष्टि से 'ट्रे' की ओर देख रही थीं, और आधी दृष्टि से क्या देख रही थीं, मैं कह नहीं सकता। इस बार उनकी आवाज़ में क्रोध का

कटीलापन नहीं था, बल्कि वह कुछ भर्राई हुई-सी मालूम होती थी। मैं पहले की ही तरह, मिलिटरी "अटेन्शन' की अवस्था में चुपचाप खड़ा था। न मैंने अपनी भूल स्वीकार की, न अपनी सफ़ाई में कुछ कहा और न उनका क्रोध शांत करने की कोई चेष्टा ही की। मेरे इस मौन भाव से स्पष्ट ही वह अधिक तमक उठीं। बोलीं—"मूर्खों की तरह अब खड़े खड़े देख क्या रहे हो? उठाओ इस 'ट्रे' को और हटो मेरे सामने से!"

यह कह कर वह एक छोटी-सी मेज़ पर रखी हुई एक किताब उठाकर एक सोफ़ा पर आ बैठीं, और उस पर पीठ अच्छी तरह से अड़ा कर, चप्पल-युक्त पाँवों को आगे बढ़ाकर मनोयोग से उसे पढ़ने का बहाना रचने लगीं।

मैं धीरे से 'ट्रे' को उठाकर चुपचाप वापस जाने लगा। अपनी मूर्खतावश, अथवा किसी अज्ञात भीतरी कारण से जान बूझकर, मैं यह पूछना भूल गया कि दूसरी चाय बना कर लाऊँ या नहीं। मैं ज्योंही दरवाज़े के पास पहुँचा त्योंही पीछे से फटकार-भरी तीखी आवाज़ सुनाई दी—"सुनो! गधा!"

मैं चौंक कर लौटा। इस बार बीबीजी की प्रज्वल आँखों की चकाचौंध पैदा करने वाली किरणें सीधे मेरी आँखों से टकराईं। नीलिमा बीबी की व्यंजनापूर्ण उज्वल आँखों की भेदभरी तीखी चितवन मुझे आरम्भ से ही अत्यन्त मोहक मालूम हुई थी। आज उनके क्रोध और आक्रोश ने उस अभिव्यञ्जना को और भी अधिक आकर्षक बना दिया था। इस बार जब उन्होंने 'गधा' कहने के

बाद ही सीधे मेरी आँखों से आँखें मिला कर देखा तो मैं भी कुछ समय तक विस्मित वेदना के साथ स्थिर दृष्टि से उनकी ओर देखता रहा। पता नहीं इस बार मेरी दृष्टि में क्या विशेषता थी? क्या इतने दिनों से दबी हुई मेरे अंतर की पीड़ा आज अचानक बाँध टूट जाने के कारण पूरे वेग से मेरी मौन आँखों में उथल उठी थी? क्या यह सम्भव है? यह कल्पना मेरे मन में इसलिए उठी कि उनके 'गधा!' सम्बोधन से कुछ विचलित होकर जब मैंने लौट कर उनकी ओर देखा तो उनकी आँखें क्रोध से रँगी हुई थीं। पर हम दोनों की चार आँखें होते ही वह जैसे कुछ सहम गई और उनकी आँखों के भाव और मुख की मुद्रा ने एक बिलकुल ही बदला हुआ रूप धारण कर लिया। कुछ क्षण तक वह एक अनोखी भ्रान्ति और मोहावेश की-सी अवस्था में मेरी ओर देखती रह गईं; जैसे आज उनकी आँखों के आगे मनोजगत के किसी अज्ञात कोने से एक नया ही वद्युतिक प्रकाश झलक उठा हो। यह सब मैं अपनी निजी अनुभूति और अनुमान से कह रहा हूँ। क्योंकि वास्तव में उस क्षण में उनके मन में किस प्रकार की भाव-तरंग उठी हुई थी, उसका ठीक-ठीक ज्ञान हो सकना मानवीय बुद्धि और अनुभूति के परे की बात है।

कुछ भी हो, कुछ ही क्षण बाद नीलिमा बीबी की मुख-मुद्रा ने फिर वही पहले का-सा रूप धारण कर लिया, और उन्होंने झिड़क कर कहा—"जाओ! अपना मुँह मत दिखाओ।"

मैं चुप चाप चला गया, इस समय मैं सोच रहा हूँ कि मेरे

अनजान में मेरे भीतर दुष्टता की कारसाजी चल रही थी, नहीं तो मैं एक दम मौन कभी न रहता। खैर!

एक तो लड़ाई के कारण महंगी, तिस पर बेकारी—इस दुगनी मार से परास्त हो कर, जीवन धारण करने का और कोई उपाय न देख कर, मैं ने एक धनी परिवार में नौकरी स्वीकार कर ली थी यह तय हुआ था कि भोजन और वस्त्र के अतिरिक्त मुझे १०) प्रतिमास नक़द मिलेगा, मेरे लिये भोजन की समस्या सब से विकट हो उठी थी, इसलिये मैं ने बड़ी प्रसन्नता से वह नौकरी स्वीकार कर ली थी, अपनी शिक्षा और संस्कृति के सम्बन्ध में मैं ने परिवार के किसी भी व्यक्ति को तनिक भी आभास परोक्ष-रूप में भी नहीं दिया, इस के बहुत कारण थे, जिन में एक यह भी था कि शिक्षित व्यक्ति को कोई अपने परिवार में सहज में नौकर रखना चाहेगा, इस विषय में मुझे बहुत संदेह था।

नीलिमा बीबी को जब मैं ने पहली बार देखा, मुझे उसी क्षण ऐसा अनुभव हुआ, जैसे उन से मेरा परिचय बचपन से रहा हो। वह देखने में सुन्दर हैं साधारण हैं या कुरूप, इस सम्बन्ध में कोई प्रश्न ही मेरे मन में नहीं उठा, जैसे यह अत्यन्त गौण बात थी। उस समय केवल यह अनुभूति मेरे मन में थी कि उन के व्यक्तित्व की सम्मिलित छवि ने मेरे मन की आँखों को ठीक उसी तरह स्पर्श किया जिस तरह रात में मीठी नींद आने के पहले आँखों की पलकें अलसाई हुई आँखों को स्पर्श कर के उन्हें ढक लेती हैं, उस के बाद प्रतिदिन प्रतिपल उन की तरह सहज-साँवली छवि मेरे मन के भीतर

अधिक से अधिकतर गहराई में पैठती चली गई, और उन का तीखा चुभता हुआ कण्ठ-स्वर उन की अनुपस्थिति में भी निरन्तर यों कानों में गूंजता रहता था। मैं सब समय कामों में व्यस्त रहता था, और भरसक किसी भी काम को अपने ढंग से नहीं करता था। पर यह सब होते हुए भी उठते-बैठते सोते-जागते नीलिमा बीबी मेरे मन से नहीं हटती थीं। मैं अपने मूर्ख मन को लाख समझाता था कि मेरे समान एक तुच्छ नौकर को प्रेम के बड़े कटीले और खर्चीले पथ पर पाँव कभी नहीं रखना चाहिये, और विशेष कर मालकिन की लड़की के प्रति प्रेम-भाव उत्पन्न होना तो किसी भी हालत में उचित नहीं है। पर मन किसी तरह भी प्रबोध नहीं मानता था और उस की दशा भीतर ही भीतर बड़ी शोचनीय होती जाती थी।

यह सब होने पर भी बाहर किसी इंगित से भी (वाणी की बात कौन कहे) मैं ने कभी एक दिन के लिये भी इस बात का आभास नहीं दिया कि नीलिमा बीबी के प्रति मेरे मन का वास्तविक भाव क्या है। मेरे मन का वह मीठा और कड़वा विष मेरे ही भीतर चुपचाप घुसता जाता था, बाहरी दुनिया के किसी भी प्राणी को उस की अणुमात्र की सूचना नहीं थी। नीलिमा बीबी को तो शायद कभी स्वप्न में भी इस बात का भाव नहीं हुआ होगा। वह बराबर मुझे इस दृष्टि से देखती आती थीं जैसे मैं एक अत्यन्त हीन प्राणी, बल्कि एक घिनौना कीट होऊँ। आज के पहले कभी पूर्ण निगाह से उन्हों ने मुझे देखा न होगा। इस लिये आज जब उन्हें

भयंकर क्रोध के आवेश में एक बार पूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा तो मुझे भीतर ही भीतर एक प्रकार के विकृत गर्व की ही अनुभूति हुई । इतने दिनों तक उन की निर्मम उदासीनता से मैं बेहद उकता उठा था । आज पहली बार उन्हें कम से कम यह तो मालूम हुआ कि मैं काठ का पुतला नहीं, बल्कि एक सजीव और सचेत प्राणी हूँ, कम से कम इतनी शक्ति तो मुझ में है कि किसी को मैं भयंकर रूप से क्रुद्ध कर सकता हूँ !

कुछ भी हो, मैं कहना चाहता था कि नीलिमा बीबी के व्यक्तित्व ने मेरे हृदय को आज आषाढ़ की ऐसी घटाटोप मेघमाला से छा दिया था जो बरसने का पूरा आडम्बर रचने के बाद भी कभी-कभी केवल तरसा कर ही रह जाती है—बरसती नहीं । फिर भी जेठ की धूप से तपे हुए मेरे हृदय को उस आयोजन ने अपने तूफ़ानी झोंके से एक प्रकार की रूखी शीतलता तो अवश्य ही प्रदान की, जिस के लिये उन के प्रति मैं एक प्रकार से कृतज्ञ ही था ।

नीलिमा बीबी के पिता बा० केसरी शरण सिनहा कलकत्ते के एक साधारण रूप से धनी व्यापारी थे । कलकत्ते में पहली बमवर्षा होने के बाद वह कानपुर चले आए थे । उन के दो लड़के थे और एक लड़की, छोटा लड़का छोटी अवस्था में क्षय रोग से पीड़ित होने के कारण चल बसा था, बड़ा लड़का लड़ाई शुरू होने के पहले ही लंदन में किसी एक विशेष विषय की शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से चला गया था, तब से फिर वह लौटा ही नहीं, बाद में यह सुनने में आया कि वह किसी गोरी लड़की के प्रेम-जाल में फँस चुका है ।

सन् १९४० में जब जर्मनों ने लण्डन पर भयंकर बमवर्षा शुरू की थी तो एक दिन एक बम अचानक उसी मकान में जा गिरा जिस में केसरीशरण जी का लड़का अपनी प्रेमिका के साथ रहता था। बाद में सुना गया कि हिंदुस्तानी प्रेमिक और गोरी प्रेमिका दोनों एक दूसरे के गले से लिपटे हुए मृत अवस्था में पाए गए, दोनों की मुखाकृति की यह दुर्दशा हो गई थी कि बड़ी मुश्किल से शिनाख्त हो सके।

रह गई अब केवल एक लड़की, यही कारण था कि बा० केसरीशरण जी और उन की गृहिणी, नीलिमा बीबी के प्रति अपने हृदय का पूरा प्यार उँड़लने पर भी संतुष्ट नहीं थे। एक मात्र लड़की को वे संसार भर के सुख-साधनों से ढक लेना चाहते थे—हालांकि वे जानते थे कि ऐसा सम्भव नहीं है। उस की किसी भी खाम-खयाली का विरोध वे नहीं करते थे, और भरसक उस की प्रत्येक विचित्र से विचित्र इच्छा की पूर्ति करने के लिये वे तत्पर रहते थे।

नीलिमा बीबी बनारस में बी० ए० क्लास में भरती हुई थीं, बनारस आने के प्रायः पाँच मास बाद ही नृपेन्द्र कुमार नामक एक युवक से उन का घनिष्ठ परिचय हो गया था। इस परिचय ने धीरे-धीरे ऐसा घनिष्ठ रूप धारण कर लिया कि लोग तरह-तरह की कानाफूसियाँ करने लगे। जब सिन्हा-परिवार में मेरी नियुक्ति हुई उस समय नृपेन्द्र कुमार से नीलिमा बीबी का परिचय बहुत घनिष्ठ नहीं हो पाया था। इस लिये उस प्रेम के इतिहास का प्रायः पूरा पता मुझे था। नृपेन्द्र कुमार के लिये खास तरह के (नाना

वेजिटेरियन) समोसे, 'फ्रेञ्च आमलेट' आदि चीजें मुझे ही तैयार करनी पड़ती थीं। नृपेन्द्र कुमार जी ने कभी एक दिन के लिये भी उन के सम्बन्ध में कोई शिकायत न की, न बीबी जी ने ही। आज उन की शिकायत का पहला दिन था, और उस का कारण भी मुझ से छिपा नहीं था। इधर कुछ दिनों से नृपेन्द्र कुमार जी एक बार भी दर्शन देने के लिये नहीं आए थे। ऐसी हालत में बीबी जी का किसी के प्रति खीझना और बौखलाना स्वाभाविक था।

पर मैं सोच रहा था कि ज्ञानी लोग जो कह गए हैं कि प्रेम अंधा है वह कभी-कभी कितना सच बैठता है! नृपेन्द्रजी की बातों से, व्यवहार, से चाल से, ढाल से मुझे आरम्भ ही में यह संदेह हो गया था कि यह शख़्स नम्बरी चोट्टा और लबार है, और धनी घराने की अनुभवहीन लड़कियों को अपने आकर्षण, रूप-रंग और चिकनी-चुपड़ी बातों से बहकाकर उनका सर्वनाश करके किनारा काटना ही उसका पेशा है। पर नीलिमा बीबी को आज तक इस संबंध में कोई संदेह ही नहीं हुआ। मुझे पूरा विश्वास था कि नृपेन्द्रजी का रुख़ स्पष्ट बदलता हुआ देखने पर भी असलियत के वेश का भी अनुमान बीबी जी नहीं लगा पाई हैं।

पर मुझसे उस धूर्तराज की कोई भी बात छिपी हुई नहीं थी। इसका कारण यह था कि मैं आरम्भ से ही उसके साथ दुगनी धूर्तता से पेश आ रहा था। वह जब जब जो कोई भी काम मुझ से करने को कहता मैं तत्काल कर लेता, और बड़ी ही नरमी और अदब के साथ उसके सामने पेश आता। उसने कभी स्वप्न में भी

मेरे बारे में यह नहीं सोचा होगा कि यह आदमी बड़ी बारीकी से उसकी साधारण से साधारण हरकत पर ग़ौर करता जाता है।

एक दिन नृपेन्द्रकुमार जी को दोपहर के भोजन के लिये नीलिमा बीबी ने निमंत्रित किया था। उस दिन इतवार था और सबने फ़ुर्सत से खाना खाया। माँ जी (नीलिमा बीबी की माताजी) खा-पीकर सो गई। दिन में खा-पीकर सोने की उनकी बड़ी पुरानी आदत थी। नृपेन्द्रकुमार जी और बीबी जी घण्टों तक कमरे में बैठकर—दुनिया भर की बातें करते रहे और बीच-बीच मे हास-विलास ज़ारी रहा। हर पाँच मिनट बाद मेरे लिये बुलावा आता था—कभी घंटी बजाई जाती, कभी आवाज़ लगाकर बुलाया जाता। हर-बार "जी आया" कहता हुआ मैं हड़बड़ा कर उठ बैठता। कभी पान की फ़र्मायश होती, कभी सिगरेट की, कभी शर्बत के लिये आर्डर किया जाता, कभी सादे पानी के लिये। मैं बाहर दरवाज़े पर बैठा-बैठा पढ़ने में दत्तचित होने का बहाना करता हुआ कान खड़े करके सब बातें सुन रहा था। जब छः बजने की तैयारी हुई तो नृपेन्द्रकुमारजी ने चलने की आज्ञा माँगी और कहा कि उन्हें एक ज़रूरी काम से घर जाना है। पर नीलिमा बीबी आज उन्हें किसी भी हालत में रात का भोजन करने के पहले छुट्टी देने को तैयार नहीं थीं। उन्होंने सिनेमा चलने का प्रस्ताव किया। नृपेन्द्रकुमारजी ने बीस तरह के बहाने बताए, पर बीबी जी ने एक नहीं सुनी। अन्त में लाचार होकर उन्हें राज़ी होना पड़ा।

जब बीबी जी कपड़े बदलने के लिये दूसरे कमरे में गई, तो

इस बीच नृपेन्द्रकुमार जी ने एक चिट् पर जल्दी-जल्दी चार-पाँच पंक्तियाँ लिखीं और झट से उसे एक सादे लिफ़ाफ़े में डाल करके उस पर कोई पता लिखे बिना ही मेरे हाथ में देते हुए मुझे समझाया कि वह पत्र कहाँ और किस व्यक्ति को देना होगा। उसके बाद धीरे से बोले—"जल्दी साइकिल में जाओ, और फ़ौरन लौट कर आओ। और देखो, नीलिमा को किसी हालत में भी मालूम नहीं होना चाहिये कि तुम कहाँ और किस काम से गए थे।" मैं सम्मतिसूचक सलाम झुकाता हुआ चल दिया।

एक अदम्य कौतूहल मेरे मन में जाग उठा। साइकिल से जाते हुए रास्ते में एक जगह मैं ठहर गया। लिफ़ाफ़ा अधखुली अवस्था में था। मैं अपने को ज़ब्त न कर सका और खोलकर मैंने पत्र पढ़ ही लिया। उसमें लिखा था—

"सुचिन्ता,

आज मैं एक अत्यन्त आवश्यक कारण से तुम्हारे यहाँ आने से रह गया। मेरे दुर्भाग्य से हम दोनों का शाम का प्रोग्राम चौपट हो गया। मैं विवश हूँ। आशा है आज के लिये तुम मुझे क्षमा कर दोगी। कल मिलने पर सब बातें बताऊँगा।

तुम्हारा नृपेन्द्र"

इस पत्र को पढ़ने पर पहले मेरे मन को एक गहरा धक्का पहुँचा। पर उसके बाद ही एक अनोखे ढंग की प्रसन्नता का-सा भाव धीरे-धीरे मेरे भीतर समाने लगा। लिफ़ाफ़े को उसी तरह से बन्द करके मैं निर्दिष्ट ठिकाने पर पहुँचा। एक बहुत ही सुन्दरी

लक्ष्मी—जिसके शारीरिक सौन्दर्य की तुलना में नीलिमा बीबी कहीं ठहरती न थीं—बड़े अधैर्य के साथ बंगले के बाहर किसी की प्रतीक्षा करती हुई टहल रही थी। मैंने साइकिल से उतरकर उनसे पूछा—"सुचिन्ता देवी क्या इसी बँगले में रहती हैं? उन्होंने मेरे हाथ में पत्र देखकर बिना कुछ उत्तर दिए ही हड़बड़ाहट के साथ वह पत्र एक प्रकार से मेरे हाथ से छीन लिया। पत्र पढ़ते ही उनकी भौंहें टेढ़ी और मुख की मुद्रा अत्यन्त गंभीर और आक्रोशपूर्ण हो उठी। अस्पष्ट स्वर में कुछ बड़बड़ाने के बाद उन्होंने मुझसे कहा—"ठहरो!" और उत्तर में कुछ शब्द घसीटकर उसी लिफ़ाफ़े में बन्द करके मुझे देती हुई बोलीं—"जाओ फ़ौरन बाबू को दो!"

मैं झूठ बोलकर अपना बड़प्पन ज़ाहिर नहीं करना चाहता। मैंने रास्ते में सुचिन्ता बीबी का दिया हुआ पत्र भी खोलकर पढ़ा। उस पत्र में लिखा था—मैं कोई बहानेबाज़ी नहीं सुनना चाहती। तुम्हें आज हर हालत में आना होगा—वर्ना........तुम समझ लेना......इसका परिणाम तुम्हारे लिये अच्छा नहीं होगा।

"—सुचिंता।"

जब मैं सुचिंता देवी का उत्तर लेकर वापस पहुँचा तो मैंने नीलिमा बीबी और नृपेन्द्र कुमार जी को बाहर दरवाज़े पर खड़े पाया। नीलिमा बीबी बन-ठन कर तैयार थीं। उनके मुख के भाव से मालूम होता था कि वह बहुत ही प्रसन्न—बल्कि पुलकित हैं। पर नृपेन्द्र जी के मुँह पर चिंता के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते थे।

मैंने साइकिल से उतरते ही उनके हाथ में पत्र दे दिया। ज्योंही उन्होंने पत्र खोलकर पढ़ा त्योंही उनके मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। नीलिमा बीबी ने घबराकर पूछा—"किसका पत्र है ?"

नृपेन्द्रजी ने पहले कुछ बड़बड़ाकर गोलमाल जवाब देना चाहा। उसके बाद अचानक उन्हों ने साफ़ आवाज़ में कहा—"आज मुझे क्षमा करना, नीलिमा ! मैं जाता हूँ, मेरी एक बहन अचानक सख्त बीमार हो उठी है। नमस्कार !" यह कह कर वह "नमस्कार" करके उसी दम चल दिए।

नीलिमा बीबी स्तब्ध हो कुछ समय तक अन्यमनस्क भाव से फ़ाटक की ओर देखती रह गईं—हालांकि उस समय फ़ाटक पर कोई था नहीं, नृपेन्द्रजी चले गए थे। जब कुछ स्थिर हुईं तो उन्होंने मुझसे पूछा—"किसके यहाँ से वह चिट्ठी तुम लाए थे ?" मुझे जहाँ तक ऊपरी बातों की जानकारी थी वहाँ तक सारा हाल मैंने ठीक-ठीक बता दिया। बीबी रानी का मुँह एकदम स्याह हो गया—पौडर की चमक कुछ भी शेष न रही। वह कुछ देर तक न जाने क्या सोचती हुई मेरी ओर देखतीं रह गईं, उसके बाद चुप चाप भीतर चली गईं।

उस दिन से नृपेन्द्रजी बीबीरानी के यहाँ दिखाई न दिए। बीबी रानी के मन की दशा दिन पर दिन एक अनोखे ही ढंग से बदलती चली जाती थी। मुझ से उन्होंने इधर एक प्रकार से बोलना ही छोड़ दिया था; हालांकि मेरी अंतरात्मा को निश्चित विश्वास था कि सुचिंता देवी और उनके पत्र के सम्बन्ध में मुझसे बहुत से प्रश्न

करने के लिये वह भीतर ही भीतर छटपटा रही हैं। उन्हें स्पष्ट ही इस बात का कुछ भी पता नहीं था कि यह सुचिता देवी कौन हैं, उनका नृपेन्द्र जी से क्या सम्बन्ध है और उस पत्र में उन्होंने क्या लिखा था जिसके कारण नृपेन्द्र जी बेहद चिंतित हो उठे थे। उन्हें संभवत: यह संदेह तो नहीं हुआ होगा कि मैं इस सारे रहस्य से परिचित हूँ, पर चूँकि वह पत्र मैं ही लाया था, इसलिए वह उस दिन से मुझ से अकारण ही बहुत रुष्ट थीं—ऐसी धारणा मेरे मन में जम गई।

आज सुवह उनके भीतर दबा हुआ बहुत दिनों का आक्रोश बाहर फूट पड़ा था। यह स्वाभाविक ही था। कारण यह था कि वह अभिमानवश मुझसे कुछ पूछती नहीं थीं और मैं वास्तव में बहुत कुछ जानते हुये भी चुपचाप था और अपने आप कुछ बताना नहीं चाहता था। मुझे केवल सुचिता देवी की चिट्ठी की ही बात मालूम नहीं थी। इस बीच मैंने सुचिता देवी के घर के नौकर-चाकरों के साथ हेलमेल बढ़ाकर नृपेन्द्र जी के साथ उनकी घनिष्ठता के सम्बन्ध में बहुत-सी भेद भरी बातें मालूम कर ली थीं, यद्यपि अभी बहुत कुछ जानना शेष था।

कुछ भी हो, उस दिन सुबह टोस्ट, आमलेट और चाय के लिए मुझे तरह तरह के कड़े शब्द कहने के बाद दिन भर वह मौन रहीं। अपनी माँ से भी उन्हों ने कोई बात नहीं की और अपने कमरे के किवाड़ फेर कर पलंग पर चुप चाप लेटी रहीं। बीच-बीच में बाहर से कान लगाने पर मुझे ऐसा मालूम हुआ कि वह सिसकियाँ भर रहीं हैं।

शाम को मैं मारे डर के माँ जी को साथ लेकर उनके पास चाय लेकर गया। माँ जी के बहुत अनुरोध पर उन्हों ने दो चार घूँट चाय की पी और एक टोस्ट भी खाया। उसके बाद वह उठ खड़ी हुई। हाथ मुँह धोकर, कपड़े बदल कर, सज-सँवर कर अकस्मात् मुझसे बोलीं—"मोटर तैयार करो, तुम्हें मेरे साथ चलना होगा।" क्षण भर के लिये मैं चकित भाव से, प्रश्न-भरी दृष्टि से उनकी ओर देखता रहा। उसके बाद चुपचाप नीचे जाकर मैंने मोटर तैयार की। मोटर-ड्राइवर छुट्टियों में घर गया हुआ था। इसलिए मैं जानता था कि मुझे ही गाड़ी चलानी होगी।

मोटर तैयार होने पर बीबी रानी जब उस पर चढ़ कर बैठ गईं तो मैंने काँपती हुई आवाज़ में पूछा—"किधर चलना होगा?"

"नृपेन्द्र बाबू के यहाँ।"

मैं कुछ कहना ही चाहता था, पर मेरे भीतर की किसी शक्ति ने बलपूर्वक मेरी ज़बान को भीतर की ओर दबा दिया। मोटर रवाना हुई।

प्रायः आठ मिनट में नृपेन्द्र जी के मकान के दरवाज़े पर आकर मैंने मोटर खड़ी कर दी। बीबीरानी ने मुझे आज्ञा दी कि मैं भीतर जाकर पता लाऊँ कि नृपेन्द्र बाबू घर पर हैं या नहीं। मैं केवल आज्ञा का पालन करने के उद्देश्य से भीतर गया। मालूम हुआ कि नृपेन्द्र बाबू शहर से बाहर चले गए हैं। मुझे पहले से ही इस बात का पता था, और मैं यह भी जानता था कि वह किस कारण से गए हैं। मैंने बाहर आकर बीबीरानी को सूचित

कह दिया कि नृपेन्द्रजी नहीं हैं। उनके इस प्रश्न के उत्तर में कि "कहाँ गए हैं?" मैंने कहा—"शहर से बाहर गए हैं आज पाँच दिन हो गए। कहाँ गए हैं, यह बात नौकर को नहीं मालूम है।"

"ओह! तो चलो......" केवल इतना ही कहकर वह रह गईं।

"घर को वापस चलूँ?"

कोई उत्तर नहीं।

दो-तीन बार लगातार जब मैंने यही एक प्रश्न किया, तब बीबी रानी की अन्यमनस्कता भंग हुई और उन्होंने झिड़ककर कहा—"कह तो दिया कि घर को लौट चलो! गधा कहीं का, सुनता नहीं!"

मैंने चुपचाप मोटर लौटाई, और घर की तरफ कुछ धीमी रफ्तार में चलाने लगा। कुछ दूर आगे चलकर हम लोग एक अपेक्षाकृत एकांत स्थान में पहुँचे, तो मैंने गला साफ करके काँपती हुई आवाज़ में कहा—"अगर आप मुझे अभयदान दें तो मैं एक बात आपको बताना चाहता हूँ जिससे नृपेन्द्र जी के बाहर जाने के सम्बंध में कुछ विशेष बातें आपको मालूम हो सकती हैं।"

आज मुझे पहली बार सुसंस्कृत भाषा का व्यवहार करते देखकर निश्चय ही बीबी रानी को आश्चर्य हुआ होगा।

कुछ देर चुप रहने के बाद उन्होंने कड़ी आवाज़ में कहा—कहते क्यों नहीं। तुम्हें कहने से कौन रोकता है!" मोटर एक पार्क के पास पहुँच गई थी। बीबी रानी ने मोटर को वहीं पर खड़ा करने की आज्ञा दी। मोटर से उतर कर उन्होंने अत्यंत

गंभीर स्वर से पार्क में अपने साथ चलने का आदेश दिया। वहाँ हम दोनों एक एकांत स्थान पर बैठ गए।

मैंने साहस बटोर कर समस्त संकोच त्यागकर स्पष्ट शब्दों में बता दिया कि नृपेन्द्र जी किस कारण से शहर छोड़कर चले गए हैं। बात यह हुई थी कि सुचिता देवी से उनकी घनिष्ठता इस हद तक बढ़ चुकी थी कि अविवाहितावस्था में ही उन्हें गर्भ रह गया था। इस बात की स्पष्ट सूचना स्वयं सुचिता देवी को संभवतः तब मालूम हुई होगी जब उन्होंने मेरे हाथ नृपेन्द्र जी को अस्पष्ट धमकी का पत्र लिखा था। नृपेन्द्र बाबू उन्हें भी बीबीरानी की ही तरह धोखा देकर साफ़ भाग निकलना चाहते थे, पर सुचिता देवी बड़ी ढीठ स्वभाव की थीं और साथ ही निपुण भी। उन्होंने नृपेन्द्र जी को यों ही भागने न दिया और कानून की धमकी दिखाकर उन्हें सिविल मैरिज के लिये बाध्य कर दिया। दोनों परिचितों के बीच से हटकर किसी दूसरे शहर में विवाह करने के लिये चले गए थे।

बीबीरानी ने सारा किस्सा धैर्यपूर्वक सुनने के बाद अचानक अत्यन्त उत्तेजित होकर कहा—"तुम झूठे हो, बदमाश हो और नंबरी लुच्चे हो! ऐसा कभी हो नहीं सकता।"

मैंने ठंडे दिमाग से कहा—"मेरी बात उन दोनों के किसी भी सगे-सम्बन्धी से अब छिपी नहीं रह गई है, इसलिए मैं झूठ हूँ या सच इसका प्रमाण आप को सहज में मिल जायगा। पर आज मैं इसी सिलसिले में एक बात अपने हृदय की कह देना

चाहता हूँ जिसे मैं इतने दिनों तक अपने भीतर बहुत भीतर एक दम गहराई में गाड़े हुए था……… ।" मैं तैश में कट गया। नीलिमा बीबी आँखें फाड़ फाड़ कर भ्रान्त दृष्टि से मेरी ओर देख रही थीं। मैं कहता चला गया—"नीलिमा देवी, मैं जीवन में सदा 'बैरा' ही नहीं रहा हूँ, और न मेरी महत्वाकांक्षा मोटर ड्राइवरी तक ही सीमित रही है। मैं ने भी जीवन में अच्छे दिन देखे हैं। थोड़ी बहुत शिक्षा भी मैं ने पाई है, और भले-बुरे, बड़े-छोटे सभी तरह के आदमियों के संसर्ग में रहने से मानव-चरित्र के सम्बन्ध में थोड़ा बहुत ज्ञान भी मुझे है………।" वास्तव में मैं कहना चाहता था कुछ, और घबराहट के कारण कहने लगा कुछ और ही। अपने हृदय में स्थिरता लाने की चेष्टा करते हुए मैं कहता गया—"नृपेन्द्र जी को जिस दिन मैं ने पहले-पहल आप के साथ देखा उस दिन से मेरे मन में विश्वास हो गया कि यह शख्स या तो आप के कौमार्य के साथ खेलने के लिये आया है, या मीठी मीठी बातों से आप पर अपना जाल बिछा कर आप के पिता की सारी संपत्ति पर अधिकार जमाने का एक मात्र उद्देश्य उस के नीच मन में छिपा हुआ है। बहुत संभव है यदि बीच में सुचिता देवी वाली बाधा न आ खड़ी होती तो वह आप के साथ विवाह कर लेता, पर यह भी निश्चित है कि विवाह हो जाने पर धीरे-धीरे आप के पिता की सारी संपत्ति पर अपना कब्ज़ा जमा लेने के बाद दूध की मक्खी के बराबर भी वह आप का मूल्य न समझता और आप का सारा जीवन विषमय बना देता। पर विधाता का यह विचित्र विधान है

कि ऐसे ही धूर्त, स्वार्थी, नीच और लम्पट पुरुषों की ओर ही स्त्रियों का झुकाव अधिक होता है, इस के एक नहीं अनेक उदाहरण मुझे व्यक्तिगत रूप से मालूम हैं। इस का कारण स्त्रियों के हृदय की हीनता नहीं, बल्कि अनुभवहीनता है। यदि यह बात न होती तो...तो...आप को इतने दिनों तक किसी दूसरे व्यक्ति के हृदय का भी हाल मालूम हुआ होता..." नीलिमा देवी की आँखों में दुःख, रोष और निदारुण विस्मय की मिश्रित व्यंजना मेरी अंतरात्मा में एक रहस्यमय प्रभाव डालने में समर्थ हुई। अचानक किसी अज्ञात भीतरी शक्ति के धक्के से मेरे कायर मन के भीतर एक आश्चर्य-जनक साहस का संचार हो गया, मैं कहता चला गया—"हाँ, इतने दिनों तक मेरे हृदय की यथार्थ भावना का लेश मात्र आभास भी आप को न मिल सका। हम बेकार लोग—हम निपट ग़रीब और भूखे, जो दो टुकड़ों के लिये आप लोगों की शरण पकड़ने के लिये वाध्य हैं—हम भी मनुष्य हैं, और हृदय रखते हैं, आप को पहली बार देखते ही मेरे भीतर जो पागल जाग उठा था उसे इतने दिनों तक लोहे की कड़ी जंजीरों से मैं बाँधे हुए था। बीच बीच में आप की छाया, और आप के शरीर को छू कर आने वाली हवा के स्पर्श-सुख से मैं आज तक किसी तरह अपने को स्थिर रख पाया हूँ। आज परिस्थिति ऐसी आ गई है कि अपने-आप मेरे हृदय का बाँध टूट पड़ा है। मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ और शपथ-पूर्वक यह कहता हूँ कि आप की विशाल संपत्ति का लेश भी लोभ मुझे नहीं है, मैं केवल आप को पा कर

ही संतुष्ट रहूँगा और आप को पाने के बाद भी आजीवन इसी प्रकार आप का नौकर बना रहूँगा, जैसा इस समय हूँ। आप के साथ विवाह हो जाने के बाद मरते दम तक कभी एक पल के लिये भी आप की किसी भी इच्छा या आदेश के विरुद्ध नहीं चलूँगा—इस के लिये आप चाहे जैसी शपथ लिवा लें, मैं लेने को तैयार हूँ। बोलिए, क्या आप को इस अकिंचन का प्रस्ताव स्वीकृत है?"

नीलिमा देवी बड़े ही गौर से, एक निराली, मोहमय दृष्टि से मेरी बातें सुन रही थीं। पर मेरे अंतिम कथन से एक अपरिसीम वेदना की लहर उनके सारे मुख में दौड़ गई और आँखों से पत्थर के आँसू निकल आए। एक अस्फुट कराह मुँह से निकालकर उन्होंने मुख फेर लिया। मेरे धड़कते हुए हृदय का कुछ निराला ही हाल था।

प्रायः दो मिनिट तक नीलिमा देवी मुँह फेरे रहीं। उसके बाद उठा खड़ी हुईं और प्रायः रोने की-सी अवाज़ में बोलीं—"चलो, देर हो गई। मुझे किसी ज़रूरी काम से जल्दी घर पहुँचना है।"

मैं एक विचित्र मोह की भाँति मानसिक अवस्था में उठा। नीलिमा देवी जब मोटर के भीतर अपनी सीट पर बैठ गई तो मैंने गाड़ी स्टार्ट कर दी।

उस दिन के बाद नीलिमा देवी मुझे देखते ही सकुचा जाती थीं, और मुँह फेर लेती थीं। उनके मुखका वह वेदना-मिश्रित सकुचाहट का भाव देखकर मेरी अन्तरात्मा के भी रोएँ खड़े हो उठते थे। मेरे उस रोमांच में पुलक की अनुभूति भी वर्तमान थी और एक अज्ञात भय की भी।

मुझे किसी भी काम के लिये आदेश देना उन्होंने छोड़ दिया। मैं अपने मन से उनका जो-कोई काम कर देता उसके लिये वह कोई आपत्ति भी नहीं जताती थीं।

प्रायः सात दिन तक यह स्थिति रही। आठवें दिन प्रायः दो बजे रात के समय मालूम हुआ कि नीलिमा देवी ने विष खा लिया है। जिस समय मैं उनके पास पहुँचा उस समय वह पीड़ा से कराह रही थीं। मेरी घबराहट का ठिकाना नहीं था। माताजी सिर पीटने लगी। नीलिमा देवी ने उसी मरणासन्न दशा में एक कागज़ सिरहाने से निकालकर मुझे दिया। मैं उसे बिना पढ़े ही सीधा डाक्टर के यहाँ पहुँचा।

डाक्टर ने आकर विष निस्कासक दवा दी, पर कोई लाभ नहीं हुआ। उन्हें किसी तरह भी नहीं बचाया जा सका। बाद में अवकाश पाने पर मैंने कागज़ पढ़ा उसमें लिखा था—"मेरे प्रति तुम्हारे प्रेम की दृढ़ता की बातों पर विश्वास करने को जी चाहने पर भी मैं विश्वास न कर सकी, सारी पुरुष जाति के ऊपर विश्वास हट गया है और जीने की कोई इच्छा शेष नहीं रही है, इसलिये—" आदि आदि।

फोटो

श्याममनोहर सक्सेना किसी इंश्योरेन्स कम्पनी का एजेंट था। दो-तीन दिन पहले उसकी स्त्री उमा घर से उसके पास आ पहुँची थी। आज सुबह इधर-उधर दौड़-धूप करने के बाद जब वह थका हुआ मकान पर पहुँचा, तो भोजन करने के बाद पलंग पर आराम करने के इरादे से लेट गया। वह अच्छी तरह लेटने भी न पाया था कि उसकी स्त्री ने आकर उसके पलंग के पास खड़े होकर कुछ व्यंग से दबी हुई मुसकान के साथ और कुछ गम्भीरतापूर्वक कहा—"मुझे पता नहीं था कि इस बीच किसी दूसरी स्त्री से तुम्हारा हेल-मेल हो चुका है।" उसके कण्ठस्वर में व्यंग कितना था और दर्द कितना, इसका ठीक-ठीक हिसाब बताना कठिन है।

श्याममनोहर कौतूहलवश करवट बदलकर उमा की ओर मुख करके बोला—"अब पता कैसे लगा, कुछ मैं भी तो जानूँ !"

"जानकर—क्या करोगे ! चुपचाप लेट जाओ, आराम करो।" यह कहकर उमा चलने लगी। श्याममनोहर पहले समझे था कि उमा परिहास कर रही है। पर अब उसके मुख का भाव और बोलने का ढंग देख कर उसे जान पड़ा कि मामला कुछ गहरा है। उसने उसका अञ्चल खींच कर उसका हाथ लेटे ही लेटे पकड़ लिया और कहा—"नहीं, तुम्हें बताना ही होगा !"

"छोड़ो, मुझे जाने दो !" कहकर वह अपने को छुड़ाने की चेष्टा करने लगी। पर श्याममनोहर ने उसे बड़ी मज़बूती से पकड़ लिया और बलपूर्वक उसे पलंग पर बिठा कर उसने पुचकार भरे शब्दों में कहा—"मुझे साफ़-साफ़ बताओ कि तुम क्या कहना चाहती हो ! किस स्त्री से मेरा हेलमेल होने की बात तुम कहती हो ?"

उमा बहुत कुछ शान्त हो गई थी, तथापि वह नीचे की ओर मुँह किए रही और कुछ भर्राई हुई-सी आवाज़ में बोली—"जिस स्त्री का फ़ोटो तुम रखे हो उसकी बात मैं कहती हूँ, और किसकी बात करती हूँ !"

"फ़ोटो ! मैं किसी स्त्री का फ़ोटो रखे हूँ ! हाः ! हाः ! हाः ! तब तो तुम्हारी बात पक्की है !" बहुत देर तक श्याममनोहर ठहाका मार कर हँसता रहा।

पर उमा इस अट्टहास से तनिक भी विचलित न हुई और

पूर्ववत गम्भीर होकर बोली—"अगर मैं अभी निकालकर दिखा दूँ तब ?"

"अच्छा दिखाओ !"

उमा उठ खड़ी हुई और थोड़ी देर में पोस्ट-कार्ड साइज़ का एक फ़ोटो, जो बहुत दिनों से किसी अरक्षित स्थान में पड़े रहने के कारण कुछ धुँधला हो गया था, हाथ में लेकर श्याममनोहर को दिखाने लगी। फ़ोटो एक सुन्दरी तथा फ़ैशनेबुल नवयुवती का था। उस धुँधले चित्र में भी युवती के आश्चर्यजनक सौन्दर्य की तीक्ष्णता स्पष्ट झलक रही थी। उसकी भाव-विभोर आँखों की मार्मिक दृष्टि से एक असहनीय तीव्रता और साथ ही एक सकरुण कोमलता की छाया-रेखाएँ जादू की किरणों की तरह विकीर्ण हो रही थीं। साधारण फ़ैशनेबुल स्त्रियों में जो सुसज्जित गुड़ियों का सा निर्जीव भाव पाया जाता है वह उसमें नहीं था। उसके चेहरे में रहस्यमय भाव की उद्दाम सम्मोहिनी दर्शक को बरबस मन्त्र-मुग्ध सी कर देती थी। कुछ क्षण के लिये श्याममनोहर विस्मय-विमुग्ध होकर उस चित्र को देखता रहा। फिर अकस्मात वह खूब ज़ोर से हँसा और बोला—"यह निर्जीव चित्र तुम्हारे मन में ऐसी ज़बर्दस्त ईर्षा जगाने में सफल हुआ है, यह सचमुच आश्चर्य की ही बात है। पर तुम्हारी ईर्षा अकारण है। इस स्त्री के साथ हेलमेल की बात तो दूर रही, उसे मैंने कभी अपनी आँखों से देखा तक नहीं।"

"तब यह फ़ोटो यहाँ कैसे आया ?"

"यही आश्चर्य तो मुझे भी हो रहा है। हाँ, याद आ गया—

एक बात सम्भव हो सकती है। मैं जब इस मकान में आया था तो जो महाशय मुझसे पहले इस मकान में रहते थे उनके बहुत से फ्रेम चढ़े हुए चित्र वहाँ एक कोने में रखे पड़े थे। मेरे आने के कुछ दिन बाद वह उन सब चित्रों को उठा कर ले गए थे। यह बिना फ्रेम का चित्र भी उन्हीं के घर की किसी स्त्री का होगा।"

"हूँ! ठीक है!" कह कर उमा बाहर चली गई। स्पष्ट ही उसे अपने पति की बात पर विश्वास नहीं हुआ था।

उमा के चले जाने पर श्याममनोहर ने चित्र को फिर एक बार गौर से देखा। वास्तव में जिस मोहनी का प्रतिरूप उतारा गया था वह ऐसा सम्मोहक था कि उसकी आँखें 'हिप्नोटाइज़' किए गए व्यक्ति की तरह उसपर बहुत देर तक गड़ी रह गईं। उमा ने फिर एक बार जब कमरे में प्रवेश करना चाहा तो पति को उस चित्र में तन्मय देख कर वह दुःख, क्रोध और ईर्षा से क्षुब्ध होकर दरवाज़े से ही लौट कर चली गई। श्याममनोहर ने कुछ समय बाद चित्र को उठाकर अपने सिरहाने, बिस्तर के नीचे छिपा कर रख दिया, और एक लम्बी साँस ली।

उस दिन रात को उमा अपने पति से नहीं बोली। श्याममनोहर ने उसे कितना ही समझाया पर उसका समझाना सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। श्याममनोहर को अपनी पत्नी के उस प्रचण्ड मान के कारण दुःख के साथ एक कौतुकजनित सुख का भी अनुभव हो रहा था। वास्तव में यह बात कौतुकपूर्ण ही थी कि जिस चित्र के सम्बन्ध में उसे किसी प्रकार की जानकारी तक कभी न रही उसे

स्वयं कहीं से आविष्कृत करके उसकी पत्नी कल्पनातीत ईर्ष्या से दग्ध हो रही है। वह बीच-बीच में मुक्त हास्य से ठठाकर अपनी स्त्री के काल्पनिक भूत को भगाने की चेष्टा करता था, पर उसकी सब युक्तियाँ उस रात निष्फल गईं।

तीन-चार दिन बाद उमा शान्त हो गई, पर श्याममनोहर के मन में उस अज्ञाता तथा अपरिचिता मायाविनी के चित्र ने जो अशान्ति उत्पन्न कर दी थी वह बढ़ती चली गई। अकेले में वह उस चित्र को देखा करता और फिर बड़ी सावधानी से उसे छिपाकर रख देता। वह सोचता कि चित्र की वह मायाविनी कुछ ही दिन पहले तक उसी मकान में रहती होगी जिसमें वह अब स्वयं रहता है! वह महिला वास्तव में फैशनेबुल है, या फोटो खिचाने के लिये फैशनेबुल बन गई थी? उसकी दिन-चर्या क्या रहती होगी? उसके पति की जीविका क्या है? वह बहुत धनी तो नहीं होगा, क्योंकि केवल १३) माहवार किराए के मकान में रहने वाले व्यक्ति की आर्थिक परिस्थिति का अनुमान लगाना कठिन नहीं है। इसी तरह की चिन्ताओं में वह निमग्न रहा करता।

एक दिन वह किसी एक चौराहे पर ताँगे पर से उतर कर किसी विशेष व्यक्ति को अपनी इन्श्योरेन्स कम्पनी के जाल में फँसाने के इरादे से फुटपाथ की बाँई ओर से होकर पैदल चला जा रहा था। अकस्मात एक व्यक्ति जिसकी आयु ३५ वर्ष के करीब होगी, उसके सामने आ खड़ा हुआ और उसके प्रति हाथ

जोड़ कर बड़े प्रेमभाव में मुस्कराते हुए बोला— "नमस्कार ! कहिये किस ओर तशरीफ़ ले जा रहे हैं ?"

श्याममनोहर क्षण भर के लिये विस्मृत-सा रहा, फिर तत्काल ही उस नवागत व्यक्ति को उसने पहचान लिया। वह वही व्यक्ति था जो पहले उसी मकान में रहता था जिसमें श्याममनोहर अब रहने लगा था। अपने चित्रों को लेजाने के लिये जब वह आया तो श्याममनोहर से उसका थोड़ा बहुत परिचय होगया था।

श्याममनोहर ने प्रत्युत्तर में कहा— "नमस्कार ! आप मज़े में तो हैं ? आप इधर कैसे पधारे हैं ?"

"मैं यहीं रहता हूँ। सामनेवाली गली में मेरा मकान है। आइए, तशरीफ़ लाइए; ज़रा चलकर मेरा नया मकान देख तो लीजिए।"

श्याममनोहर ज़रा हिचकिचाया। पर उसके नव परिचित मित्र ने बड़े आग्रह के साथ कहा—"यहीं दो कदम पर मकान है। आप एक बार अवश्य चलकर मुझे कृतार्थ करें।"

इस आग्रह और अनुरोध से विवश होकर श्याममनोहर उसके साथ चला। चलते चलते उसने अपने नये मित्र से पूछा— "माफ़ कीजिए, आपका नाम मैं भूल गया।"

"मुझे रामसरन कहते हैं।"

"आपके साथ आपके घर और कौन-कौन रहते हैं ?"

"मेरी माँ है और मेरी बहन।"

"माफ़ कीजिएगा, पर आप विवाहित तो अवश्य होंगे ?"

"जी नहीं, मैंने अभी विवाह नहीं किया है, और न कभी करने का इरादा है।"

"आश्चर्य है!"

"यह मेरा मकान आ गया। आइए, पधारिए!"

रामसरन नामधारी महाशय श्याममनोहर को सीधे ऊपर ले गए, और एक सुसज्जित कमरे में उसे लाकर बिठा दिया। कमरे की दीवारों पर इतने अधिक चित्र टँगे थे कि मुश्किल से कोई स्थान बाकी बचा होगा। चित्र सभी प्रकार के थे। शिव के ताण्डव नृत्य तथा राधा-कृष्ण की युगल मूर्तियों के चित्रों से लेकर सिनेमा स्टार्स तक सभी की प्रतिछवियाँ वहाँ विराजमान थीं। महात्मा गांधी से लेकर पं० गोविन्दवल्लभ पन्त तक सभी नेता वहाँ शोभायमान थे। पारिवारिक चित्रों की संख्या भी कुछ कम नहीं थी। जिस मोहनी के चित्र ने श्याममनोहर पर गहरा प्रभाव डाल रखा था उसका एक बड़े साइज का फ़ोटो भी एक कोने में टँगा हुआ था।

श्याममनोहर कुछ देर तक चित्रों को देखता रहा। इसके बाद उसने अपने नव परिचित-मित्र से पूछा—"आप यहाँ क्या आफ़िस में काम करते हैं?"

बड़ी नम्रता और प्रेमभाव से श्रीयुत रामसरन ने उत्तर दिया—"जी नहीं, मैं बहुत-से पत्रों का सोल एजेन्ट हूँ। अख़बारों की एजेन्सी से और आपकी कृपा से मैं दो रोटियाँ कमा लेता हूँ।"

श्याममनोहर यह प्रश्न पूछने के लिये विशेष उत्सुक हो रहा था कि "आपकी बहन क्या करती हैं ?" पर उसे साहस नहीं होता था ।

"आप ज़रा देर तशरीफ़ रखे रहें, मैं अभी आता हूँ ।" यह कहकर रामसरन जी भीतर चले गए। श्याममनोहर अकेले बैठे-बैठे छत की कड़ियों को गिनने लगा । उसका हृदय अकारण ही किसी अज्ञानित आशा अथवा आशंका से धड़क रहा था । प्राय: पाँच मिनट बाद रामसरन जी वापस चले आए । आते ही बोले– "माफ़ कीजिएगा, देर हो गई, आपको अकेले ही बैठे रहना पड़ा !"

"जी नहीं, जी नहीं—" इसके आगे श्याममनोहर कुछ नहीं कह सका ।

"आप यहाँ क्या करते हैं ?"

"मैं एक इन्श्योरेन्स कम्पनी का एजेन्ट हूँ ।"

"काम तो आप का अच्छा ही चलता होगा ?"

"जी हाँ, काफ़ी अच्छा चलता है ।"

इसके बाद दोनों कुछ समय तक मौन बैठे रहे । श्याममनोहर ऐसा भाव जताने लगा जैसे वह चित्रों के निरीक्षण में तन्मय हो । इसके बाद वह एकाएक बोल उठा "अच्छा, अब मुझे आज्ञा दीजिए ।" कहकर उठने लगा ।

रामसरन जी ने कहा—"वाह ! यह कैसे हो सकता है ! पहली बार आप मेरे मकान में तशरीफ़ लाए हैं, बिना जल-पान किए कैसे जा सकते हैं !"

श्याममनोहर नम्रतापूर्वक जल-पान के प्रति अपना विराग प्रदर्शित करना ही चाहता था कि भीतर की ओर के दरवाज़े का पर्दा हटा और प्राय: एक पचीस वर्ष की अनुपम सुन्दरी युवती ने भीतर प्रवेश किया। युवती एक चिट्टी-सी साड़ी पहने थी जिसकी कन्नी पर कारवाँ का चित्र बना हुआ था। एक लाल रंग का ब्लाउज़ उसके शरीर की शोभा बढ़ा रहा था। उसके मुख के भाव से एक सरस स्निग्ध शोभा और सौष्ठव व्यक्त हो रहा था; उसकी आँखों की चुम्बक-माया की अपूर्वता का विश्लेषण करना कठिन था। वह एक रहस्य-भरी मुसकान से मन्द-मन्द मुस्कराती हुई आई। श्याममनोहर मुहूर्त्त के दर्शन से समझ गया कि यह जादू-गरनी वही है जिसका फ़ोटो उसे उसकी स्त्री ने दिखाया था। वह ऐसा हौलदिल हो गया था कि उस सुन्दरी के स्वागत के लिये खड़ा होने की चेष्टा करने लगा, पर घबराहट के कारण आधा खड़ा होकर रह गया। सुन्दरी सहज स्वाभाविक गति से पास ही एक कुर्सी पर आकर बैठ गई। रामसरन जी ने उसका परिचय देते हुए श्याममनोहर से कहा—"यह मेरी बहन रामकली है।" इसके बाद उन्होंने रामकली को भी श्याममनोहर का परिचय दिया। श्याममनोहर ने बुद्धू की तरह रामकली की ओर घब-राहट की दृष्टि से देखते हुए हाथ जोड़े। रामकली ने बड़े सुघड़पन के साथ उसका प्रत्यभिवादन किया।

रामसरन जी ने अपनी बहन से पूछा—"चाय में कितनी देर है?" उत्तर मिला—"आती ही होगी। पर क्या सकसेना जी हम

लोगों के यहाँ चाय पी सकेंगे ?" किसी प्रकार का संकोच या झिझक इस प्रश्न में नहीं था, जैसे कोई नव-परिचिता महिला नहीं कोई सभ्य चतुर ढीठ पुरुष यहाँ प्रश्न कर रहा हो।

इस प्रश्न से श्याममनोहर की झिझक कुछ दूर हो गई। उसने सकरुण मुस्कान की तरल आभा अपनी आँखों में झलकाते हुए यथाशक्ति शांत भाव से कहा—"क्षमा कीजिएगा, आपका प्रश्न मुझे कुछ रहस्यमय-सा लगता है।"

रामकली ने कुछ गम्भीरता के साथ उत्तर दिया—"मैं आपको यह बतला देना अपना कर्तव्य समझती हूँ कि हम लोग हरिजन हैं।"

रामचरन जी ने आँखों के संकेत से अपनी बहन को सम्भवतः यह बताया कि उसने अपनी जातीयता के सम्बन्ध में यथार्थ सूचना देकर अवसर-विरुद्ध कार्य किया है। पर रामकली इस संकेत से तनिक भी विचलित नहीं हुई। वह अपनी सहज स्वाभाविक ढिठाई से श्याममनोहर की ओर देखती रही। श्याममनोहर ने अपनी घबराहट को यथा-शक्ति दबाने की चेष्टा करते हुए कहा—"यदि यही कारण है, तब तो मैं अवश्य ही आपके यहाँ चाय पीऊँगा।" यह कहते हुए उसका मुँह अकारण ही लज्जा और संकोच से लाल हो आया। उसने सिर आधा नीचे की ओर कर लिया और कनखियों से रामकली की ओर देखने लगा। रामकली मंद-मधुर मुस्कराने लगी। सम्भवतः वह यह बात ताड़ गई थी कि श्याममनोहर सुधारवादी होने के कारण नहीं, बल्कि उसके सौंदर्य

की छटा और हाव-भाव-चेष्टा से मन्त्र-भ्रान्त होकर उसके हाथ की चाय पीने को तैयार हुआ है।

थोड़ी देर में एक नौकर चाय का पूरा सरंजाम और उसके साथ ही मिठाई, नमकीन, बिस्कुट आदि जलपान की सामग्री लेकर आया, और एक गोल मेज़ के ऊपर उसने सब सामान रख दिया। तीनों उस मेज़ के इर्द-गिर्द बैठ गए। रामकली बड़े सुघड़-पन के साथ प्रत्येक के कप में चाय ढालने लगी। श्याममनोहर के लिये किसी शिक्षिता और फ़ैशनेबुल महिला के साथ एक ही टेबिल में बैठकर चाय पीने का यह प्रथम अवसर था। वह मौन-मुग्ध होकर चाय ढालते समय रामकली के अङ्ग-प्रत्यंग की एक-एक हरकत पर बड़ी बारीकी से ग़ौर कर रहा था। रामकली भी चाय ढालती हुई बीच-बीच में अपने जादू-भरे कटाक्ष से उसपर सम्मोहन के साथ मारण-बाण भी निक्षेप करती जाती थी।

चाय का चक्कर समाप्त होने में पूरा एक घण्टा बीत गया इस। बीच रामकली ने अपनी बातों से और व्यवहार से श्याममनोहर को पूर्णतः अपने वश में करके उसके मन की यह दशा कर डाली थी कि वह उसके चरणों की धूल सर पर डालने को तैयार था। साथ ही उसे ऐसा अनुभव होने लगा जैसे इस परिवार से उसका परिचय केवल घंटे भर का नहीं था; जैसे पूरा एक युग उसे इन दो भाई-बहनों के संसर्ग में रहते बीत चुका है। रामसरन जी का प्रेमपूर्ण अतिथि-सत्कार देखकर भी वह कम प्रसन्न नहीं हो रहा था।

चाय-पान समाप्त होने के बाद रामकली ने अकस्मात यह प्रस्ताव किया कि तीनों साथ ही फ़िल्म देखने चलें। इतनी शीघ्र-गति से इस मायाविनी नारी को घनिष्ठता बढ़ाते देखकर श्याम-मनोहर को जितना आश्चर्य हो रहा था उतना ही उसके मन में यह विश्वास भी दृढ़ होता चला जाता था कि उसकी किसी भी बात में अस्वाभाविकता की बू० तक वर्तमान नहीं थी। वास्तव में इस सतेज नारी के स्वभाव की ढिठाई में एक ऐसी विशेषता थी जो उसे सुहाती थी और उसके रूप के जादू का असर चौगुना बढ़ाती थी।

श्याममनोहर को सिनेमा से प्रेम नहीं था। पर उस दिन वह रामसरन जी और उनकी बहन के साथ सिनेमा देखने गया, और अपनी गाँठ के पैसों से उसने 'अँमधार' नामक फ़िल्म के लिये सबके लिये टिकट ख़रीदे। रामकली कोई दृश्य देखकर कभी हँसती, कभी टीका-टिप्पणी करने लगती, कभी स्तब्ध और मौन रहती। रामकली फ़िल्म देख रही थी, पर श्याममनो-हर रामकली के रंग-ढंग देख रहा था।

सिनेमा देखकर श्याममनोहर घर लौटा, और अपनी स्त्री से अधिक बातें न कर केवल एक पराठा खाकर पलंग पर चुपचाप लेट गया, और आज के दिन की छोटी से छोटी बात का स्मरण करके उसे तरह-तरह की काव्य-कल्पना से रंगकर रस लेने की चेष्टा करने लगा।

तब से रामकली के यहाँ उसका आना-जाना नियमित रूप से

चलने लगा। उसे यह बात प्रथम परिचय के दो-तीन दिन बाद मालूम हुई कि रामकली लड़कियों के नार्मल स्कूल में अध्यापिका है।

उस दिन इतवार था। श्याममनोहर सुबह से ही यह इरादा किए बैठा था कि आज दिन भर रामस्वरूपजी के यहाँ अड्डा जमायेगा। प्रायः साढ़े ग्यारह बजे उसने खाना खाया, और खाना खाते ही चलने की तैयारी करने लगा। उमा की आज बहुत इच्छा हो रही थी कि मनोहर आज दोपहर को घर ही पर रहे। प्रायः आठ साल के विछोह के बाद श्याममनोहर से वह मिल पाई थी। पर मिलने के पहले ही दिन वह निगोड़ा फ़ोटो उसके हाथ लग गया! उसके मन में इस बात का पूरा विश्वास जम गया था कि उस फ़ोटो को लेकर उसने मनोहर के साथ जो व्यंग किया था उसी से नाराज़ होकर मनोहर तबसे उसके साथ एक बात भी जी खोल कर नहीं करता। वास्तव में उसके प्रति मनोहर का हृदय कुछ ऐसा बदल गया था कि उसके किसी भी प्रश्न का उत्तर वह पूरी तरह से नहीं देता था, और भरसक अपने उत्तर को केवल 'हाँ' या 'ना' तक सीमित रखने की चेष्टा करता था। उस को अब इस बात के लिये भी बड़ा पश्चाताप होने लगा था कि प्रारम्भ में कुछ दिनों तक वह फ़ोटो को लेकर व्यंग किया करती थी और हृदय का भाव जताती थी तो मनोहर प्रेमपूर्ण परिहास से उसे मनाने की कोशिश किया करता था, पर वह अपने मान पर अड़ी रहती थी। निश्चय ही उसी मान की प्रतिक्रिया का ही यह फल है कि अब मनोहर उससे मान किए बैठा

है, और उसके साथ निपट उदासीनता के साथ पेश आता है। आज वह इस बात के लिये क्षमा माँगने का विचार कर रही थी और श्याममनोहर को हर हालत में मनाने के लिये तैयार बैठी थी। पर श्याममनोहर की उदासीनता आज और दिनों की अपेक्षा और अधिक स्पष्ट हो उठी थी। उसका मन किसी कारण से इस कदर उखड़ा हुआ मालूम होता था कि उसको उससे कुछ बातें करने का साहस नहीं हो रहा था। पर आज वह जो निश्चय कर चुकी थी उससे हटना भी नहीं चाहती थी। उसने मनोहर के एक दम निकट आकर अचानक उसका हाथ मज़बूती से पकड़ लिया और आँखों में एक निराली, मस्तानी अदा झलकाती हुई संकेत भरी मुस्कान के साथ बोली—"बैठो, आज तुम कहीं नहीं जा सकते। आज न जाने दूँगी, बालम !" उसने यह प्रेम-परिहास किया तो सही, पर भीतर ही भीतर वह भयंकर रूप से सहमी और घबराई हुई थी कि उसके पति के वर्तमान मनोभाव को देखते हुए इस प्रकार के रस-रंग की बातें कहीं उलटा असर पैदा न करें।

आज बाहर निकलने के लिये श्याममनोहर के पंख फड़फड़ा रहे थे। उमा ने जब अपने प्यार और दुलार से उसे बरबस घर के क़ैदखाने में बन्द करने की प्रतिज्ञा-सी कर ली, तो वह मुक्ति के लिए भीतर-ही-भीतर बुरी तरह छटपटाने लगा। पर बाहर से उमा की उस आंतरिक सहृदयपूर्ण रसाकांक्षा और प्रेम-प्रार्थना का तिरस्कार का साहस उसे नहीं होता था। वह मरे

मन से कुछ देर तक अपने कमरे ही में बैठा रहा और जी मसोस-मसोस कर, बड़े ही रूखे भाव से अपनी पत्नी का प्रेम-पीड़न सहता रहा। बाद में जब उमा ने उसकी रुखाई की शिकायत बड़े ही स्नेह करुण शब्दों में करनी शुरू की और अपने भीतर की बहुत दिनों की दबी हुई वेदना का भावपूर्ण उद्गार प्रकट करते-करते अपनी आँखों को खारे जल से भिगोना आरम्भ कर दिया, तो यह सब 'लीला' श्याममनोहर के लिये असह्य हो उठी। वह कुछ देर तक अस्पष्ट शब्दों में न जाने क्या बड़बड़ाता रहा, और उसके बाद उमा का हाथ छुड़ाकर अचानक उठ खड़ा हुआ।

घर से बाहर निकलकर जब वह बड़ी सड़क के चौराहे पर पहुँचा तो उसने चैन की एक लम्बी साँस ली। वह रामसरनजी के मकान की ओर अनिश्चित पगों से धीरे-धीरे चलने लगा। जब मकान के दरवाज़े के पास पहुँचा तो एक बार उसकी इच्छा हुई कि उलटे पाँव लौट चले। पर फिर न जाने क्या सोचकर उसने दरवाज़ा खटखटाना शुरू कर दिया।

"कौन ?"—बड़े ही तीखे किंतु मर्मस्पर्शी स्वर में किसी ने भीतर से पूछा।

"मैं हूँ श्याममनोहर। रामसरन जी हैं क्या ?"

"जी नहीं, वह यहाँ नहीं हैं।"

स्पष्ट ही यह कण्ठस्वर उसी मायाविनी का था, जिसने अपने फ़ोटो तक में एक अवर्णनीय जादू की सजीवता बिखेर दी थी। पर उसका आज का व्यवहार श्याममनोहर को बड़ा विचित्र-सा

लगा। उसका नाम मालूम करके भी उसने दरवाज़ा नहीं खोला और भीतर से ही उत्तर देकर टरका देना चाहा। इसका कारण श्याममनोहर की समझ में न आया। बहुत सोचने पर केवल एक संभावना उसकी समझ में आ रही थी। वह यह कि रामसरन जी की अनुपस्थिति में रामकली उसे भीतर बुलाना निरापद नहीं समझती। उसने मनही मन कहा, "वह मुझे भी वैसा ही गुण्डा समझती है, आखिर नीच जाति की स्त्री ही तो है। हरिजन समाज की चरित्रहीनता के बीच में जिसका पालन-पोषण हुआ है वह किसी की सच्चरित्रता पर विश्वास ही कैसे कर सकती है?" इसी तरह की बातें सोचता हुआ वह कुछ देर तक अव्यवस्थित और अनिश्चित मानसिक अवस्था में दरवाज़े के पास ही खड़ा रहा। उसके मन में इस बात की एक अस्पष्ट और क्षीण आशा अभी तक बनी हुई थी कि रामकली दरवाजा खोलेगी।

अकस्मात उसके कानों में दो व्यक्तियों के सम्मिलित अट्टहास की स्वर-लहरी गूँज उठी। वह शब्द रामसरन जी के मकान के दुमंज़िले से आ रहा था। इसमें संदेह के लिये तनिक भी गुंजाइश न थी कि उन दो व्यक्तियों में से एक स्वयं रामकली है। पर दूसरा व्यक्ति, जो कि निश्चय ही पुरुष था, कौन है, इस बात का अन्दाज़ लगाना श्याममनोहर के लिये असम्भव था। पहले, केवल क्षण भर के लिये, यह भ्रम उसे अवश्य हुआ था कि दूसरा व्यक्ति स्वयं रामसरन जी हैं, और रामकली ने जान बूझ कर उसे यह ग़लत सूचना दी है कि रामसरन जी घर में नहीं हैं। पर उसका

यह भ्रम दूसरे ही क्षण मिट गया था। अट्टहास के साथ ही साथ दोनों आपस में कुछ बातें भी कर रहे थे। श्याममनोहर बड़े जोर से, कान खड़े करके सुनने लगा। वह केवल इतना ही अनुमान लगा पाया कि रासकली जिस व्यक्ति से बातें कर रही है वह चाहे कोई हो पर रामसरन जी नहीं हैं, और यह विश्वास भी उसके मन में जम गया कि उसी की—श्याममनोहर की चर्चा चलाते हुए वे दोनों अट्टहास कर रहे हैं। पर उसके सम्बन्ध में क्या बातें हो रही हैं, इसका ठीक ठीक अन्दाज़ वह नहीं लगा पा रहा था, क्योंकि केवल कुछ अस्पष्ट अथवा फुटकर शब्दों की भनक उसके कानों में पड़ रही थी। उन फुटकर शब्दों का तारतम्य अपनी चोट खाये हुए मन की आशंक कल्पना में विचित्र रूपों में जोड़ता हुआ वह अपने मस्तिष्क के चारों ओर एक अनोखे जगद्‌जाल की रचना करने लगा। उसे ऐसा लगा कि इतना बड़ा अपमान उसका बड़ा से बड़ा शत्रु भी कभी करने का साहस नहीं कर सकता था। उसकी इच्छा हुई कि दरवाज़ा तोड़ कर भीतर घुसे और ऊपर जाकर दोनों अट्टहास-रत व्यक्तियों को गला दबोच कर समाप्त कर डाले। वह अपने दाँतों को पीस कर रह गया। अट्टहास का क्रम अभी तक जारी था। श्याममनोहर के कानों में वह शब्द आग में जलाए हुए ज्वलंत सीसे की तरह पहुँच रहा था। दरवाज़े पर खड़े रह कर उस शब्द को सुनना शूली पर चढ़ाये जाने की क्रिया से भी अधिक कष्ट-प्रद मालूम हो रही थी। पर वहाँ से हटने के लिये भी उसके पाँव जैसे उठ नहीं रहे थे।

उस मुहल्ले में वह अपरिचित था, और उस गली में आने जाने वाले व्यक्ति एक अजनबी को रामसरन जी के दरवाज़े के बाहर खड़ा देख कर बड़े ज़ोर से उसकी ओर देखते थे। अन्त में लोक लज्जा बलीयसी सिद्ध हुई, और श्याममनोहर अनिच्छा से वहाँ से चलने लगा। वह सोचने लगा कि रामकली ने आज जो उसका अपमान किया उस का क्या कारण हो सकता है। उसके मन में धीरे-धीरे यह विश्वास जमने लगा कि प्रारम्भ में कुछ दिनों तक रामकली ने उसकी जो आव-भगत की, आदर-सत्कार किया, वह केवल मीठी मीठी बातों से उसे बहका कर उसे चाय पिला कर, खाना खिला कर उसे 'धर्म भ्रष्ट' करने के इरादे से किया। शिक्षित हरिजन समाज में पैदा होने के कारण उसके मनमें उच्च वर्णों के व्यक्तियों के विरुद्ध बदला लेने की भावना निश्चय ही उग्र रूप में वर्तमान है। इसी लिये उसने उलटे सीधे उपायों से उसे अपने वश में करके उसका 'धर्म' नष्ट करके उसे दुत्कार दिया। "अच्छा जिस व्यक्ति के साथ वह इस समय बातें कर रही थी, जिसके साथ वह मेरे खिलाफ़ अट्टहास में सहयोग दे रही है, वह कौन हो सकता है? वह भी निश्चय ही मेरी ही तरह कोई उच्च वर्ण का व्यक्ति है। उसे भी मेरी ही तरह फुसला कर वह चाय पिलावेगी, खाना खिलायेगी? और उसके मन से 'छुआछूत' का भूत भगाकर मेरी ही तरह उसकी जातीयता नष्ट करके अन्त में उसे धता बता देगी। पर यह भी तो सम्भव है कि उस व्यक्ति से उसका नया प्रेम-संबंध स्थापित

हुआ हो। पहले ही दिन उसके रंग-ढंग देखकर मुझे मालूम हो गया था कि वह एक निर्लज्ज और चरित्रहीन स्त्री है। निश्चय ही यही बात है कि उसने एक नए प्रेमिक को फाँस लिया है। आज चूँकि रामसरन जी घर पर नहीं हैं इसलिए उन दोनों को मुक्त होकर रस-रंग की बातें करने की पूरी सुविधा मिल गई है। मैं उन दोनों के बीच में निश्चय ही मूर्तिमान विघ्न की तरह लगता, इस लिए रामकली ने मेरे जाने पर दरवाज़ा तक नहीं खोला। निश्चय ही वह बहुत से प्रेमिकों से संबन्ध स्थापित कर चुकी है। मुझे भी वह फाँसना चाहती थी, पर अब इस कारण वह मुझसे कतराने लगी है कि मैं चरित्रहीन नहीं हूँ और उसके फंदे में जल्दी नहीं आ सकता।" उसके अन्तर्मन ने उससे पूछा--"क्या तुम सच कहते हो? क्या तुम सचमुच सच्चरित्र हो? क्या रामकली के रूप और यौवन की ओर तुम बेसुध होकर नहीं खिंचे हो?" पर इस प्रश्न के उत्तर में वह भीतर ही भीतर केवल "चुप! चुप!" कहकर रह गया।

उसके भीतर कुछ दूसरी ही प्रवृत्तियाँ, दूसरी ही प्रेरणाएँ काम कर रही थीं। उसके भीतर जो सचमुच का गुण्डा छिपा हुआ था वह बाहर प्रकाश में आने के लिए छटपटा रहा था। ईर्षा का उच्छृङ्खल उन्माद उसके मन और मस्तिष्क को बुरी तरह ऐंठने लगा था। उसके मन में यह कल्पना रह रहकर तीव्र से तीव्रतर रूप धारण करती जाती थी कि रामकली अपने प्रेमिक के साथ यह चर्चा करती हुई अत्यन्त सुखी हो रही होगी कि उन दोनों ने उसे--श्याममनोहर को--अच्छा बेवकूफ़ बनाया है। दोनों प्रेम की

मुक्त तरंगों में मनमाने ढंग से विहर रहे होंगे, जबकि वह स्वयं आवारा कुत्ते की तरह दरवाजे से दुरदुराया हुआ बाहर भटक रहा है। रह रहकर उसके कलेजे में साँप लोट रहे थे।

सहसा उसकी सारी भद्रता और सच्चरित्रता का मुखड़ा उतर गया और उसके भीतर का गुण्डा पूरे प्रवेग से भीतर की दीवारों को तोड़ फोड़ कर बाहर निकल आया। वह बिना कुछ सोचे-समझे फिर से रामकली के मकान की ओर लौट पड़ा। जब दर-वाजे के पास पहुँचा तो ऊपर से उन्हीं दो व्यक्तियों के बोलने का शब्द स्पष्ट सुनाई दिया। रामकली एक बार किसी बात पर खिल-खिलाई और दूसरा व्यक्ति--निश्चय ही उसका प्रेमी--जवाब में ठट्ठा मार कर हँसा। असह्य पीड़न से पागल-सा होकर श्याममनोहर ने भड़भड़ शब्द से दरवाजे पर धक्का दिया।

"कौन है ?" घबराई हुई आवाज में ऊपर से रामकली ने पूछा, पर श्याम मनोहर ने इस बार कोई उत्तर न दिया। वह केवल जोर से दरवाजे को भड़भड़ाता रहा।

रामकली ने एक बार फिर पूछा—"कौन है ?" जब इस बार भी कोई उत्तर न मिला, और दरवाजे को भड़भड़ाया जाना जारी रहा, तो वह नीचे उतर आई, और उसने भीतर से चिटखनी खोल दी। श्याममनोहर को देख कर उसके मुख की मुद्रा गंभीर हो आई। उसने कहा—"ओह, आप हैं !"

श्याममनोहर का मुँह लज्जा और संकोच से लाल हो आया था, जैसे उसने कोई बड़ी भारी चोरी की हो। उसने कहा—

"माफ़ कीजिएगा, मैं यह जानना चाहता था कि रामसरन जी आ गए हैं या नहीं ?"

"अभी नहीं आए हैं। वह तीन दिन के लिए शहर से बाहर गए हुए हैं। परसों शायद आवें।" बड़े रूखे ढंग से रामकली ने उत्तर दिया।

"ओह, यह बात है। अच्छा—हाँ, एक बात मैं आप से कहना चाहता था।"

"कहिए !"

"पर यहाँ नहीं, भीतर चलिए……"

"यहीं क्यों नहीं कह लेते ? कोई ख़ास बात है क्या ?"

श्याममनोहर जानता था कि वह किसी हालत में भीतर ले जाना पसन्द नहीं करेगी। पर उसने भी एक निराला हठ ठान लिया था। एक दुराग्रही की तरह उसने कहा—"जी हाँ, ख़ास ही बात है।"

"तो कल सुबह किसी समय आइएगा। आज संभव नहीं है।"

श्याममनोहर ने इस बात पर गौर किया कि रामकली ने 'सुबह' शब्द पर विशेष जोर दिया। जिसका अर्थ उसने यह लगाया कि वह कल भी सुबह के अलावा और किसी समय उससे इसलिए नहीं मिलना चाहती कि अपने नये प्रेमिक से कल भी उसका 'एप्वायंटमेंट' है। उसके भीतर ही भीतर बड़े भयंकर रूप से ईर्षा की आग दहकने लगी। संकोच और लज्जा का शेष चिह्न भी अपने मन के अतल में डुबाकर वह बोला—

"आज क्यों सम्भव नहीं है, क्या मैं जान सकता हूँ ?"

"आज मेरे एक विशेष मित्र आए हुए हैं।" रामकली ने बिझिझक कहा।

"ओह, तब तो उनसे मिल कर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।"

"पर, पर—"

इतने में एक सुदर्शन युवक ऊपर की सीढ़ियों से उतर कर नीचे आ खड़ा हुआ। उसे देखकर क्षण भर के लिये वह विस्मित-सा रह गया। पर रामकली तत्काल ही बड़े ज़ोरों से खिलखिला उठी। उसके बाद उसने श्याममनोहर को संबोधित करके सुदर्शन युवक की ओर संकेत करते हुए कहा—"यही हैं मेरे वे मित्र जिन से मिल कर आप को बड़ी प्रसन्नता होने की सम्भावना है।"

"ओह, आपकी तारीफ़ ?" कटे हुए मन से श्याममनोहर ने पूछा।

"आपका नाम श्रीयुत व्रजमोहनदास है। आपने अभी बनारस यूनिवर्सिटी से एम० ए० पास किया है। यहाँ आप के पिता की फर्निचर की एक बहुत बड़ी दुकान है।"

"आप क्या कायस्थ हैं ?" सुदर्शन युवक की ओर देखते हुए श्याममनोहर ने पूछा।

"जी नहीं, मैं हरिजन हूँ ! मेरे पुरखे मुद्दत से बढ़ई का काम करते रहे हैं।"

"हरिजन ! बढ़ई ! तो आप भी हरिजन हैं ! अच्छा !"

सुदर्शन युवक ने मन्द-मन्द मुस्काते हुए पूछा—"क्यों, आपको

आश्चर्य क्यों हो रहा है ? आप तो जैसे चौंक उठे !"

"नहीं, नहीं, मैं चौंका नहीं। बड़ी प्रसन्नता हुई आप से मिल कर। आप दोनों अपने हरिजनत्व के सम्बन्ध में बड़े स्पष्टवादी हैं, यही जानकर मैं कुछ......पर वह कुछ नहीं......"

"आप क्या अपनी जात-पाँत के संबंध में किसी का अस्पष्ट-वादी होना पसन्द करते हैं ?"

"नहीं, नहीं, भला मैं ऐसा क्यों पसन्द करूँगा। मेरा मतलब कुछ दूसरा ही था। मैं जानना चाहता था कि आपका परिचय इनसे (रामकली की ओर इशारा करते हुए) कैसे हुआ ?"

"यह एक लम्बा किस्सा है, उसे जानकर क्या कीजिएगा। आप यह बताइए कि आप यहाँ कैसे पधारे ?"

"मैं रामसरनजी से एक विशेष काम से मिलना चाहता था।"

रामकली विचित्र मुसकान के साथ बोल उठी—"वाह, अभी तो आप कह रहे थे कि आप मुझसे कुछ ज़रूरी बातें करना चाहते हैं।"

श्याममनोहर हतप्रभ होकर क्षण भर के लिए रामकली की ओर देखता रहा। उसके बाद कुछ लड़खड़ाती हुई सी ज़बान में बोला—"हाँ हाँ, आप से भी मुझे कुछ काम था।"

"क्या काम था, बताते क्यों नहीं।"

"पर—पर वह यहाँ बताने की बात नहीं है।"

"नहीं, आप को बताना ही होगा और यहीं पर, मेरे मित्र इन महाशय के सामने। इनसे छिपाकर मैं आपकी कोई भी बात

कभी नहीं सुनना चाहूँगी।"

"पर पर……"

"नहीं, अब आप को बताना ही होगा। इसमें 'पर-वर' की कोई बात नहीं है। कहिए, क्या काम था आप को मुझसे ? जरा भीतर चले आइए, अगर एकदम दरवाजे पर कहने में आपको कुछ संकोच होता हो तो !"

रामकली की भौंहों में एक निराली ढिठाई और आँखों में एक तीखे व्यंग का कटीला आभास वर्तमान था। श्याममनोहर की सिट्टीपिट्टी भूल गई थी। उसने भ्रांतभाव से एक बार सदर्शन युवक की ओर देखा और फिर रामकली की ओर देखकर प्रायः हकलाता हुआ बोला—"असल में मैं आप से इन्श्योरेंस के सम्बन्ध में कुछ पूछना चाहता था। मैं-मैं अपना बीमा कराना चाहता हूँ।" रामकली मुक्त भाव से खिलखिला पड़ी।

सुदर्शन युवक ने कहा—"इनसे और बीमा से क्या संबंध ?"

असल में मैं रामसरन जी से मिलना चाहता था, पर वह यहाँ नहीं हैं, इसलिए—"

"समझा !" यह कहते हुए सुदर्शन युवक के मुँह पर की मुसकान। घनघोर गंभीरता में परिणत होगई। उसने प्रायः गरजती हुई वाणी से कहा—"आप जानबूझकर बन रहे हैं। आपकी बातों से जाहिर है कि आप किसी अच्छे उद्देश से यहाँ नहीं आए हैं। आप शायद आज ही एक बार पहले भी आ चुके हैं—आप ही

तो थे जिन्हें प्राय: आधा घंटा पहले यह सूचित किया गया था कि रामसरन जी यहाँ नहीं हैं ?" अंतिम प्रश्न सुदर्शन युवक ने रामकली से किया।

रामकली बोली—"हाँ आप ही थे।"

सुदर्शन युवक ने श्याममनोहर को लक्ष्य करके कहा—"यह जानते हुए भी कि रामसरन जी यहाँ नहीं हैं, आप फिर चले आए और दरवाज़ा भड़भड़ाने लगे। जब आपसे पूछा गया कि कौन है, आपने कोई उत्तर नहीं दिया। इन सब बातों का आशय क्या है ? अगर कोई दूसरा होता तो उसका गला पकड़कर एक धक्के में मैं बाहर ढकेल देता। पर चूँकी आप राम सरन जी के परिचित है, इसलिये आपको केवल भविष्य के लिये चेतावनी देकर इस समय मै योंही छोड़े देता हूँ, ख़बरदार, आगे फिर-कभी आपने इस प्रकार-गुण्डों की-सी हरकत की तो अच्छा न होगा। जाइए, अपना रास्ता नापिए।"

श्याममनोहर को ऐसा लगा जैसे उसकी पीठ पर 'चोर' लिखकर उसके मुँह पर कालिख पोत कर, उसे गधे की पीठ पर चढ़ाकर तमाम शहर में उसे घुमाने की तैयारी हो रही है। रोनी सी सूरत बनाकर वह बाहर चला गया, बाहर निकलते ही फिर एक बार रामकली और उसके 'मित्र' के सम्मिलित अट्टहास का शब्द मर्मान्तक वेदना से उस के कानों में गूँजने लगा।

उस घटना के बाद श्याममनोहर फिर कभी रामकली के यहाँ नहीं गया, पर उसका जो अपमान रामकली ने अपने 'मित्र' के द्वारा

कराया था उसकी पीड़ा रह-रहकर उसके कलेजे को बराबर छेदती रही। उसके मन में यह विश्वास दृढ़तर हो गया था कि रामकली का वह मित्र नंबरी लफंगा है, और रामकली से उसका दुर्नीति मूलक संबंध है। यह होते हुए भी उसने श्याममनोहर को इस ढंग से डाँटा था जैसे वह रामकली का गार्जियन हो, और रामकली के सामने उसे गुण्डा साबित करके घर से बाहर निकाल दिया। उलटा चोर कोतवाल को डाँट बतावे, इस तरह की बातें सोचकर श्याममनोहर की आत्मा रामकली नाम की उस 'वेश्या' को (वह मन ही मन उसे 'वेश्या' संबोधित करके काफ़ी आत्म-संतोष प्राप्त कर लेता था) और उसके लफंगे यार को बिना पानी पिये ही कस कस कर कोसा करता था।

इधर उसकी पत्नी उमा अपनी पूरी शक्ति से चेष्टा करने पर भी उसका मन अपनी ओर खींचने में अपने को असमर्थ मालूम कर रही थी। एक दिन उसने समस्त संकोच त्याग कर अपने पति के पाँव पकड़ लिए और कहा "मुझे क्षमा कर दो!"

श्याममनोहर ने खींचकर अपने पाँव हटा लिए और कहा—"क्षमा किस बात के लिये करूँ? तुमने क्या कोई अपराध किया है? क्यों इस तरह का पागलपन करती हो?"

उमा ने कहा—"वह निगोड़ा फोटो मेरी जान का गाहक साबित हुआ। मैंने हँसी में तुमसे कहा था कि तुम उस फोटो वाली स्त्री से—पर वह सब मेरी मूर्खता थी। मैं जानती हूँ कि तुम कभी भूलकर भी किसी दूसरी स्त्री से प्रेम नहीं कर सकते।

पर अपने लड़कपन के लिये मैं क्या कहूँ ! एक बात मैंने योंही कह दी और तुम तबसे उसे गाँठ बाँधे हुए हो, और तब से बराबर मुझसे रिसाए रहते हो !"

ऐसा मार्मिक व्यंग श्याममनोहर के जीवन काल में किसी ने उससे नहीं किया, जैसा उमा ने अपने अनजान में, अत्यंत सरल और निष्कपट भाव से आज उसके साथ किया। उसकी आत्मा तिलमिला उठी, वह फोटो ! जब उमा ने पहले दिन उसका उल्लेख करके यह ताना (हँसी में या वास्तव में) कसा था कि उस फोटोवाली स्त्री से उसका प्रेम संबध चल रहा है, तो वह आन्तरिक अविश्वास के साथ कैसे मुक्तभाव से हँसा था ! तब क्या स्वप्न में भी उसे इस बात का खयाल था कि वह अपरिचित रमणी, जिसका फोटो इत्तफ़ाक से इस मकान में भूल से रह गया था, एक दिन वास्तव में उसके जीवन को ऐसे घनघोर रूप से (चाहे बुरे के लिये हो या भले के लिये) छा लेगी, और अंत में अपने असंख्य प्रेमिकों में से किसी एक के द्वारा उसे बुरी तरह अपमानित करेगी ? और आज उमा सच्चे दिल से, अपने अंतःकरण के विश्वास से कह रही है कि तुम किसी दूसरी स्त्री से प्रेम नहीं कर सकते !, यह कैसी भयंकर विडंबना है ! कोई यदि यह कहता कि तुम किसी दूसरी स्त्री का प्रेम नहीं पा सकते, तो यह कहीं अधिक सत्य होता।

श्याममोहर ने उमा की बात का कोई उत्तर नहीं दिया वह चुपचाप वहाँ से उठकर बाहर चला गया।

कुछ दिन बाद उसे डाक द्वारा एक निमंत्रण पत्र मिला। उसमें नीचे रामसरन जी के दस्तख़त थे। उसमें लिखा था कि अमुक सौर तिथि अमुक चाँद तिथि, अमुक वार और अमुक तारीख़ को उनकी बहन श्री रामकली देवी का विवाह "शहर के सुप्रसिद्ध मिस्त्री" श्री बुलाकी दास के सुपुत्र श्री ब्रजमोहन दास एम० ए० के साथ होना निश्चित हुआ है। इसलिये "उसमें समिलित होकर कृतार्थ करने की कृपा करें।"

श्याममनोहर ने ब्रजमोहनदास का नाम तीन चार बार इस संदेह से पढ़ा कि कहीं वह पढ़ने में भूल तो नहीं कर रहा है।

आत्महत्या या खून ?

"लोगों का ख़याल है कि उसने आत्महत्या की थी । पर असली बात किसी को मालूम नहीं है । आज उसको मरे दश वर्ष से भी अधिक हो चुके हैं । अब तो लोग उसे भूल भी गये होंगे; पर वह मूर्त्ति भूलने योग्य नहीं थी, मिस्टर माथुर !"

रात्रि का समय है । गिर्जे की घड़ी में अभी कुछ देर पहले ग्यारह बजे का घण्टा बज चुका है । युक्तप्रान्त के किसी छोटे शहर के एक कोने में एक पुराना मकान है । मकान काफ़ी बड़ा है । सारा मकान अन्धकाराच्छन्न है । भाँय-भाँय कर रहा है । केवल तिमञ्जिले के एक कमरे में लालटेन के धुँधले प्रकाश में दो व्यक्ति एक मेज़ के पास लगी हुई दो कुर्सियों पर आमने-सामने बैठे बातें

कर रहे हैं। दोनों प्रायः समवयसी दीखते हैं। अवस्था पैंतीस और चालीस के बीच की होगी। मेज पर स्काच विस्की की एक बोतल पड़ी है जो खाली हो चुकी है। एक सज्जन रेशमी कुरता और लङ्कलाट का सफेद झलझलाता हुआ पजामा पहने हैं और दूसरे पैंट-कोट-समालँकृत सूट-बूट-धारी महाशय का नाम कन्हैया-लाल खत्री है। वह देखने में अत्यन्त सुरूप हैं, यद्यपि अत्यधिक मद्यपान के अभ्यास के कारण उनकी नाक के दो सिरों से होकर जो दो स्थायी रेखायें उनके निर्मुच्छ मुखपर अङ्कित हो गयी हैं उनके कारण उनका रूप कभी-कभी कुछ विकृत-सा दिखायी देने लगता है। इस समय भी उनकी आँखे चढ़ी हुई हैं और मद्यपायी की स्वाभाविक भावुकता का आवेश उनपर पूर्णतः सवार दीखता है। कुर्ता पाजामा धारी महाशय का नाम कृपाशङ्कर माथुर हैं। आप को इस शहर में आये कुछ ही महीने हुये हैं। इसी थोड़े अर्से में आपने शहर के प्रायः सभी गण्यमान्य सज्जनों से मैत्री जोड़ ली है। खत्री महाशय के यहाँ आप का आना-जाना-प्रायः नित्य लगा रहता है। लोगों का ख्याल है कि आप 'सिन्सियर' देश-सेवक तथा सच्चे समाज सुधारक हैं। सुना जाता है कि कुछ गुप्त राजनीतिक मन्त्रणा सभाओं में आप भाग लेते हैं, और सामाजिक सुधार पर पब्लिक में व्याख्यान दिया करते हैं। इस शहर में आपका शुभागमन क्यों हुआ, इस सम्बन्ध में जब आपसे प्रश्न किया जाता है तो आप कभी कहते हैं कि हवा बदली के लिये आये थे, कभी फरमाते हैं कि किसी अज्ञात शत्रुकर्मी ने आप को

यहाँ आने का नियन्त्रण दिया था। आप मद्यपान नहीं करते, केवल शिष्टाचार के लिहाज से बाबू कन्हैयालाल का साथ देने के लिये ज़रा "सिप" कर लेते हैं।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि बाबू कन्हैयालाल आज शराब के रङ्ग में विशेष तरङ्गित हो रहे थे। अचानक लहर में आकर उन्होंने अपने नव-परिचित, तथापि अन्तरङ्ग मित्र श्रीयुत कृपाशङ्कर माथुर से एक ऐसी घटना की चर्चा छेड़ दी जो स्पष्ट ही उनके अतीत जीवन की स्मृति से विशेषरूप से सम्बन्धित मालूम होती थी। वह माथुर साहब को मिस्टर माथुर कहके सम्बोधित किया करते थे। अपने पूर्वोल्लिखित कथन को दुहराते हुए वह आवेश पूर्वक बोले—"वह कदापि भूलने योग्य नहीं थी। हाँ, मैं यह बात दावे के साथ कह सकता हूँ, मिस्टर माथुर, कि अगर आपको उसे अपने जीवन में कभी एक झलक भी देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ होता, आप मरते दम तक उसे न भूल सकते। उफ़ !"

कृपाशङ्कर ने कहा—"आप कहते हैं कि उसने आत्महत्या नहीं की। तब उसकी मृत्यु के सम्बन्ध में आप का क्या ख़याल है ?"

कन्हैयालाल ने उस स्तब्ध कमरे में एकबार चारों ओर सरसरी निगाह से देखा कि कहीं कोई तीसरा व्यक्ति उन दोनों की बातों को छिपकर सुन तो नहीं रहा है। यद्यपि ऐसी आशङ्का का कोई कारण नहीं था, तथापि कन्हैयालाल ने इस सम्बन्ध में सावधान रहना आवश्यक समझा। इसके बाद कृपाशङ्कर के कान की

और अपना मुँह बढ़ाकर दबी हुई जबान में कहा—'उसकी हत्या की गयी थी।"

"हत्या ?"

"जी हाँ, हत्या इसी कमरे में मेरे ही हाथों हुई थी !"

यह कह कर एक लम्बी साँस लेकर बाबू कन्हैयालाल अपने स्थान में यथापूर्व बैठ गये। माथुर महाशय ने आश्चर्य का भाव प्रकट करके कहा—"आप क्या बक रहे हैं ? अवश्य ही ज्यादा शराब पी लेने से आपका दिमाग ठिकाने नहीं है।"

"नहीं मिस्टर माथुर, मेरे होश-हवास एकदम दुरुस्त हैं और मैं बिलकुल सही बात आप से कहता हूँ। मैंने ही उस लड़की का खून किया था और इसी कमरे में किया था।" इस बार कन्हैया-लाल ने जानबूझ कर या अनजान में फिर अपनी आवाज़ चढ़ाता। वह कहते चले गये—"आप एक भोले-भाले,सरल प्रकृति के आदमी हैं; इस लिये आप को यकीन नहीं होता कि कोई शिक्षित व्यक्ति कभी किसी की हत्या कर सकता है। पर मानव-चरित्र अत्यन्त रहस्यमय है।"

श्रीयुत माथुर ने कहा—"माफ़ कीजिये, मैं कुछ समझा नहीं। अगर आप पूरा ठीक-ठीक सुना सकें तो सम्भव है कुछ अन्दाज़ा लगा सकूं।"

बाबू कन्हैयाल अचानक परम उत्साहित हो उठे। बोले-"सुनियेगा ? अच्छा सुनिये। आप मेरे अन्तरङ्ग मित्र हैं; इस-लिये आप से आज कोई बात नहीं छिपाऊँगा। दस साल में जो

बात मेरे गले में अटक रही है, आज उसे बाहर निकाल कर अपना बोझ हलका करना चाहता हूँ। अच्छा, तब सुनिये:—

"मैं तब स्थानीय गवर्नमेंट हाई स्कूल में ऊँचे दर्जों के लड़कों को अँगरेज़ी पढ़ाता था। अविवाहित था, इस लिये अकेला था। इसी मकान के लगे-लगे जो दूसरा बड़ा मकान है, उसी में मैं रहता था। कह नहीं सकता कि शहर के अन्य सब मकानों को छोड़ कर केवल यही एक मकान मुझे पसन्द क्यों आया। दो कमरे बड़े सस्ते किराये पर मिल गये। सारा मकान खाली पड़ा था, केवल सबसे नीचे एक कोने वाले कमरे में चौकीदार रहता था। वह भी कभी रहता था, कभी हफ़्तों तक गायब रहता था। इतनी बड़ी कोठी में अकेले रहना कम साहस की बात नहीं थी। इस प्राचीन गृह में भूतों का भी अड्डा बतलाया जाता था। पर तब मेरी रगों में जवानी का खून जोश मार रहा था। इसके अतिरिक्त मैं एकान्त प्रिय था और भावना-मग्न रहना पसन्द करता था। फ़िला-सिफ़ी की ओर मेरा झुकाव था। इन सब कारणों से मुझे उस विशाल भवन में एकान्तवास बड़ा लुभावना मालूम होता था। भौतिक लीला का अत्याचार (वास्तविक अथवा काल्पनिक) मुझे अवश्य सहन करना पड़ता था, पर उसमें भी मुझे एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता था। अपने हाथ से मैं अपना खाना बनाता था। एक महरी सुबह-शाम आकर चौका बर्तन करके चली जाती थी। शाम के लिये रोटियाँ सुबह ही पका लेता था और एक बर्तन में ढक कर अलग रख देता था। शाम को स्कूल से आते ही

खा लेता और तब आराम से टूटी हुई आराम-कुर्सी पर हाथ-पाँव पसार कर लेट जाता और सिगरेट से धुँआ निकालता हुआ एक पुस्तक हाथ में ले लेता और उसी में तल्लीन हो जाता।

"एक दिन इसी प्रकार मैं बरामदे पर बैठा हुआ किसी पुस्तक में मग्न चित्त हो रहा था। अकस्मात मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मेरे कन्धे पर पीछे से किसी ने किसी चीज़ से मारा है। उठकर पीछे फिर कर देखा तो दखनी छाली का एक टुकड़ा पड़ा हुआ था। आश्चर्य-चकित होकर मैं इधर-उधर देखने लगा, पर कहीं किसी का कुछ पता न चला। अभी सूर्य नहीं छिपा था। इस सुस्पष्ट प्रकाश में भौतिक काण्ड की कोई सम्भावना मुझे नहीं दिखायी देती थी, तथापि मैं घबरा उठा। रात-भर अच्छी, तरह नींद न आयी।

"दूसरे दिन भी यही हाल रहा। अन्तर केवल यही था कि छाली के बदले में आज एक बताशा था! मेरी तो सिट्टी-पिट्टी भूल गयी। सिर चक्कर खाने लगा। तीसरे दिन मैं ने निश्चय कर लिया कि आज सँभल कर बैठूँगा और चौकन्ना हो कर रहूँगा। पर उस दिन भी ऐसे मौके में मेरे सिर पर चोट पड़ी जब मैं किसी भावना से अन्यमनस्क हो पड़ा था। व्यर्थ इधर-उधर देखने लगा। सहसा किसी का कलहास्य सुन कर मैं चकित रह गया। आवाज़ बगल वाले मकान से आयी थी। कुछ देर बाद उसी ओर ताक-झाँक करता रहा। तीसरी मंजिल का बरामदा जहाँ पर खतम होता है वहाँ पर दीवार की आड़ में नाग कन्या के समान एक अनुपम सुन्दरी बाला खड़ी थी और मेरी ओर देख कर मन्द-मन्द मुसका

रही थी। उस मूर्ति को देख कर मेरा तो रोवाँ-रोवाँ विकल हो उठा। मुझे अपनी अन्यमनस्कता पर यह देख कर आश्चर्य हुआ कि आज तक मेरा ध्यान अपनी इस निकटतम पड़ोसिन पर नहीं गया। यह स्पष्ट था कि उस का ध्यान बहुत दिनों से मेरी ओर गया था और यह परिहास-रसिका, चंचला नवेली आज तक शायद इसी प्रतीक्षा में थी कि पहले मैं ही उस के प्रति आकर्षित हो कर हाव-भाव द्वारा उस की रूप पूजा करूँ; अब जब उस ने देखा कि मेरे अन्यमनस्क स्वभाव की जड़ता अविच्छेद्य है तो उस ने इस उपाय से मेरा तप भङ्ग करना चाहा।

"कहना नहीं होगा कि उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। उस के दर्शन मात्र से, पल-भर में, मेरी वर्षों की साधना पुष्ट हो गई, मेरे संयम का बंधन छिन्न-भिन्न हो गया। आज तक मैं अपनी शून्य भावनाओं तथा छोटी पुस्तकों के चिंतन और मनन में ही संलग्न था। संसार की बाल वस्तुओं के प्रति एक प्रकार से बिलकुल उदासीन था। पर आज सरूप, सशरीर, जीवित मूर्ति ने मुझे आमरी माया के फेर में डाल दिया। उस पल से मेरी मानसिक स्थिति ऐसी हो गयी कि एक मिनट का भी अवकाश पाता तो उसी बरामदे की ओर नज़र दौड़ता। वह भी अब समय-समय में बरामदे में आने-जाने लगी। उठते, बैठते, खाना पकाते, खाते, पुस्तक पढ़ते, सोते, जागते, सब समय मेरा मन उसकी ओर लगा रहता और आँखे प्रतिपल उसके दर्शन की प्यासी रहती थीं। स्कूल का समय उसी की चिन्ता में कटता था, और छुट्टी की

घण्टी बजते ही मैं एक मिनट की देर किये बिना सीधे तेज कदम बढ़ाता हुआ मकान की ओर चल देता। हृदय का प्रत्येक अणु-परमाणु उसी की उत्सुकता से व्याकुल रहने लगा। वह बरामदे में आते ही बेझिझक मुझे घूरने लगती और कुछ देर खड़ी रहकर फिर भीतर चली जाती। मैं स्पष्ट देख रहा कि भीतर किसी काम को आधा छोड़कर बरामदे में एक रस्सी पर टँगे हुये तौलिये से हाथ पोंछने के बहाने वह पाँच-पाँच मिनट के अन्तर में आकर मुझसे आँखें लड़ा जाती। दिन-दिन उसकी धृष्टता बढ़ती जाती थी। नौकर के अतिरिक्त केवल तीन प्राणी मुझे उस मकान में दिखायी देते थे। एक अधेड़ अवस्था के सज्जन, एक स्त्री और एक यह नवेली। मैंने अनुमान लगाया कि अलवेली अपने माँ-बाप के साथ है। पर यह मेरा भ्रम था जो शीघ्र ही दूर हो गया।

"इस संसार में कुछ स्त्रियाँ की आकृति-प्रकृति ऐसी होती है जिसे देखते ही तत्काल यह अनुभव होने लगता है कि वे कालि-दास के मेघदूत में वर्णित चिर-विलासिनी स्त्रियों की श्रेणी के नींव हैं। वे एक वर्तमान कवि के कथनानुसार न तो माता है, न कन्या, न बहू। वे केवल चिर यौवनविहारिणी सुन्दरी रूपसी के रूप में विराजती हैं और विश्व-प्रेयसी के रूप में सब का ताप हरण करती हैं। मेरी नव-परिचिता ललना को भी इसी श्रेणी में सन्नि-विष्ट किया जा सकता है। मेरे समान अन्यमनस्क उदासीन प्राणी को भी जब उसने विचलित कर दिया, केवल विचलित नहीं, उन्माद-ग्रस्त कर डाला, जो उसकी उद्दाम यौवन-तरङ्ग की

कल्पना सहज में की जा सकती है।

कैसे उसका परिचय प्राप्त करूँ, किस उपाय से उसके साथ आलाप-मिलाप का सम्बन्ध स्थापित किया जाय, रात-दिन यही एक भावना मेरे चित्त को निरन्तर आन्दोलित कर रही थी।

मैं इसी चिंता में था कि एक दिन संध्या और रात्रि के मध्य समय एक गेंद के आकार में लपेटा हुआ कागज़ का टुकड़ा मेरे बरामदे में आ गिरा। पहले मैंने सोचा कि उस क्रीड़ा-विलासिनी ने केवल मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिये इसे मेरी ओर फेंका होगा। मैं अन्यमनस्क होकर उस कागज़ को फाड़कर फेंकना ही चाहता था कि अकस्मात् मेरा माथा ठनका। एक कौतूहल मेरे मन में जागरित हुआ। भीतर जाकर बत्ती जलायी और उस कागज़ को खोलकर देखा तो स्त्री-लिपि में एक पत्र लिखा हुआ। स्थान-स्थान पर सिकुड़न पड़ जाने के कारण ठीक पढ़ा नहीं जाता था। इसलिये मैंने पहले हाथ से तानकर, दबाकर कागज़ को ठीक किया, फिर धड़कते हुये कलेजे से पढ़ने लगा। पत्र के ठीक-ठीक शब्द तो मुझे याद नहीं, फिर भी उसकी भाषा, भाव और शैली स्पष्ट स्मरण हैं। पत्र इस आशय का था:—'जनाबमन, जब से मैंने आपको देखा है, दिन में भूख जाती रही है, रात को नींद हराम हो गयी है। हर घड़ी मुझे आप का ही ध्यान रहता है। मैं अबला हूँ, असहाय हूँ। सास-ससुर की निगरानी में रहती हूँ। आप से मिल नहीं सकती, जी की दो बातें नहीं कर पाती। मेरे पति परदेश रहते हैं, मेरी सुध नहीं

लेते। सास-ससुर भी मुझे उनके पास भेजना नहीं चाहते, क्योंकि उन्हें अपनी टहल के लिये एक जनी चाहिये। रात को मैं तीसरी मञ्जिल में अकेली रहती हूँ और सास-ससुर दूसरी मञ्जिल में सोते हैं। रातभर अकेले में जी घबराया रहता है और नींद नहीं आती। अब आप से मेरी यही प्रार्थना है कि आप बरामदे से मुझे दर्शन देते रहें और इस अभागिनी की सुध न बिसारें।'"

"पत्र के नीचे यह दोहा लिखा था—

जो मैं ऐसा जानती प्रीत किये दुख हो।
नगर ढिंढोरा पीटती प्रीत न कीजो कोय॥

"उसके नीचे लिखा था—'आप के प्रेम की प्यासी पन्ना देवी।'"

"मैंने उस पत्र को चूमा और सँभालकर रख दिया। उसी दिन शाम को मौका पाकर, जब वह बरामदे में अकेली खड़ी थी, मैंने भी अपना पत्र उसी तरह लपेट कर उसके शरीर पर दे मारा। उसने उठा लिया और भीतर चली गयी।

"इसके बाद उसने एक दिन अपने नौकर के हाथ मेरे पास पत्र भेजा। पहले तो यह जानकर मैं घबराया कि हम दो व्यक्तियों का प्रेम-सम्बन्ध गोपनीय रहस्य किसी तीसरे प्राणी के आगे प्रकट हो गया है। पर मैंने देखा कि नौकर विश्वास के योग्य है। इस प्रकार कुछ दिनों तक नौकर के मार्फ़त हमारे प्रेम-पत्रों का आदान-प्रदान होता रहा। अन्त को एक दिन मैं उस नौकर के ही ज़रिये पिछवाड़े के रास्ते से होकर रात को व्यक्तिगत रूप से

पन्ना से मिलने में समर्थ हुआ। तब से बराबर उसके यहाँ मेरा आना-जाना जारी रहा। प्रेम-जनित उत्सुकता, भय तथा संशय से भरे हुये वे दिन मेरे जीवन के इतिहास में अक्षय होकर रहेंगे। उसमें खतरा भी था और 'रोमांस' भी। पर उसी में आनन्द था।

उस वर्ष बड़े दिनों की छुट्टी में भी मैं घर नहीं गया। प्यारी के प्रेम पाश में ही वह अवकाश बिताया। पन्ना ने पूर्णतः मुझे आत्म-समर्पण कर दिया था। उसके प्रेमालिङ्गन में एक ऐसा जादू था जिसके वश में होकर मेरे हृदय में पाप-पुण्य, नीती-अनीति की कोई भावना ही उत्पन्न न हुई।

"मेरी इस मोहावस्था को एक दिन प्रबल आघात पहुँचा। एक दिन उसके पास जाने में मुझे किसी कारण से देर हो गयी। और दिनों में ग्यारह बजे रात को उसके पास पहुँच जाता था; उस दिन एक बजे के करीब उससे मिलने गया। और दिनों कमरे का दरवाज़ा मेरे आने के समय खुला रहता था, उस दिन मैंने बन्द पाया। खटखटाना ही चाहता था कि अचानक किसी संदेह के वश होकर चुपके खड़ा रह गया और दरवाजे पर कान लगा कर सुनने लगा। ऐसा मालूम होता था कि भीतर दो व्यक्ति कानाफूसी कर रहे हों। पहले मैंने ख्याल किया मेरा वहम है, पर कुछ ही देर में मेरा सन्देह बिलकुल दूर हो गया। भीतर वास्तव में दो व्यक्ति थे मुझे तो आश्चर्य, दुःख और क्लेश के कारण मूर्छा-सी आने लगी। विस्मय और संशय से मैं वहीं पर स्तब्ध भाव से सिर झुकाये खड़ा रहा। अन्त को भीतर से

चिटखनी खुलने का शब्द हुआ। मैं अन्धकार में सीढ़ियों की आड़ में खड़ा हो गया। मैंने ख्याल किया था कि मेरी तरफ का दरवाजा खुलेगा। पर वह नहीं खुला। यह स्पष्ट था कि दूसरी ओर के दरवाजे से होकर चोर भाग गया था। बिना पूर्वाभास के आकस्मिक वज्रपात होने से पथिक जिस प्रकार स्तम्भित हो जाता है, ठीक वही दशा उस समय मेरी हो रही थी। नौकर! हे भगवान! यह कल्पना अत्यन्त मर्मघाती तथा घोर अपमानकर थी! नौकर! नौकर! मेरे दिमाग में केवल यही तीन अक्षर नृत्य करने लगे। मैं पागलों की तरह छटपटाने लगा। उसी दम पन्ना का गला दबोचकर काम तमाम कर डालने की इच्छा हुई। पर किसी तरह अपने को सँभाला और यह निश्चय कर लिया कि बिना पूर्ण प्रमाण के उस पर हाथ नहीं चलाऊँगा। दरवाजा खटखटाया। पन्ना ने खोल दिया और जब भीतर चला आया तो उसने फिर भीतर से बन्द कर दिया। मैंने पूछा—'अभी कोई आदमी यहाँ आया था?' काँपती हुई आवाज़ में उसने उत्तर दिया-नहीं तो!, 'अभी इस तरफ का किवाड़ खोलकर कौन गया?' वह घबराकर मेरा प्रश्न दुहराती हुई बोली-'कौन गया? कोई नहीं गया? कौन गया? कैसी बात करते हो! हवा से किवाड़ के खड़-खड़ाने की आवाज़ सुनी होगी! अच्छे वहमी हो!, मैं चुप रह गया, पर दिल में खटका लगा ही था, वह किसी तरह निकलना नहीं चाहता था।

दूसरे दिन मैंने नौकर की आकृति-प्रकृति पर गौर किया। रात

दिन उससे मुलाकात होने पर भी उस दिन तक मैं उसके सम्बन्ध उदासीन था। उसका कारण शायद यही था कि मैं उसे केवल एक साधारण नौकर के ही बतौर देखता था। इस बात की कोई सम्भावना ही मुझे कभी प्रतीत नहीं हुई कि पन्ना के साथ उसका कोई गूढ़ सम्बन्ध भी कभी रह सकता है। अब मैंने देखा कि वह तन्दुरुस्त है, साफ-सुथरा रहता है, सिर के बाल सवाँरने का उसे खास शौक है, और देखने में भी विशेष बुरा नहीं मालूम होता। मैं अपनी मूर्खता और अज्ञानता को धिक्कारने लगा। रोग के कीटाणु की तरह मेरे दिमाग में वहम का कीड़ा घुस गया। सोते में जागते में यह भावना जोंक की तरह मेरे वक्षस्थल में प्रतिक्षण चिमटी रहती कि नौकर के साथ उसका अवैध सम्बन्ध है। जब कभी बरामदे में उन दोनों को एक-साथ खड़े पाता तो अपने कमरे से अलक्ष्य में उन दोनों के प्रत्येक हाव-भाव पर अत्यन्त सूक्ष्मता पूर्वक विचार करने की चेष्टा करता। वह नौकर भी उसी की तरह चुस्त, चलाक और चंचल था। पन्ना को ऐसे समय जब मैं कृतिम कोप करते देखता तो मेरे सिर से पाँव तक आग उठती और मैं मन-ही-मन कहता-रण्डी है! वह एक साधारण बाजारू औरत है! नौकर! नौकर! नौकर! रण्डी! रण्डी! रण्डी। सोचते-सोचते मैं प्रायः प्रलाप ग्रस्त हो जाता।

"स्कूल में लड़कों को पढ़ाने की इच्छा बिलकुल नहीं होती थी। उन्हें अनुवाद के लिये कोई विषय देकर स्वयं कुर्सी पर बैठे-बैठे उसी एक ही भावना को कुरेद-कुरेद कर उस पर विचार करने

लगता। इस अन्यमनस्कावस्था में कभी मेज पर पड़ी हुई खड़िया से लिख बैठता-रण्डी! कुलटा! नौकर!, होश ठिकाने आने पर तत्काल लिखा हुआ मिटा देता।

"मैं सोचता—न मालूम कब से यह घृणिता व्यभिचारिणी इस नौकर से सम्बन्ध रखती चली आती है! मुझे अपनी अन्धता पर दुःख होता था। मुझे पहले ही जान लेना था कि यह नीच कुलटा एक सम्भ्रान्त पुरुष के प्रेम के योग्य नहीं है। जो स्त्री इतनी शीघ्रता से अपने नौकर के हाथ किसी नव-परिचित पुरुष को प्रेम-पत्र भेज सकती है उसकी बकल और औकाद क्या है, यह बात मुझे पहले ही मालूम हो जानी चाहिये थी। पर मैं प्रेम-प्रपञ्च की कला में नौसिखिया था, और उस वेश्या ने मेरी इसी अज्ञता का नाजायज फायदा उठाया। सोचते-सोचते मेरा मस्तिस्क ऐसा गरम हो उठता कि अपने सिर के बालों को नोचने की इच्छा होती। कालिदास की नायिका! पर क्या कभी कालिदास के मेघदूत में वर्णित कोई विलासिनी कभी किसी हीन वेश के पुरुष के साथ व्यभिचार के लिये सम्मत होती! वेश्या में भी यदि सम्भ्रान्त भाव हो तो उस का कामाचार क्षमा हो सकता है। इस विचित्र बूर्जवा तर्क का आश्रय पकड़ कर मैं उसे मन-ही-मन पानी पी-पी कर कोसने लगा।

"मैं इसी घात में बैठा रहा कि इन दोनों को किसी दिन प्रत्यक्ष एक-साथ पकड़ पाऊँ तो द्विविधा रहित हो कर उस वेश्या को उस के कर्म का फल चखाऊँ। मेरे लिये पिछवाड़े के रास्ते के अतिरिक्त दूसरा मार्ग खुला नहीं था। इसी लिये मैं परेशान था। फिर भी मैं

उपाय ढूँढ़ता रहा। एक दिन मैं अपने प्रयत्न में सफल हो गया। दोनों मकानों की छतें एक दूसरे से मिली थीं। बीच में व्यवधान केवल एक दीवार का था। दीवार ऊँची थी, संदेह नहीं। पर मैं ने एक काठ की सीढ़ी का प्रबन्ध कर के यह बाधा दूर कर ली। दीवार के ऊपर चढ़ कर मैं ने फिर सीढ़ी को उठा कर दूसरे मकान की छत से मिला लिया और नीचे उतर आया। मैं ऐसे मौके पर पहुँचा जिस समय छत पर किसी का आना-जाना सम्भव नहीं हो सकता था। छत से नीचे तिमञ्जिले को जाने वाली सीढ़ियों पर आड़ में खड़ा हो गया। नौकर आया और बिना इधर-उधर देखे सीधा पन्ना के कमरे की ओर चला गया। दरवाज़ा पहले से ही खुला था। उस ने आ कर भीतर से बन्द कर दिया। अब मेरे लिये सन्देह की कोई गुञ्जायश न रही। जिस उपाय से आया था उसी उपाय से मैं सीधा वापस गया। एक शीशी आर्सेनिक की मेरे पास रखी थी और इंजेक्शन की एक पिचकारी भी थी। इन दोनों चीज़ों को मैं ने अपने पूर्व निश्चित कार्य-क्रम के अनुसार पहले से ही यह सोच कर अपने पास रख लिया था कि न मालूम किस समय इन की जरूरत आ पड़े। दोनों को साथ में रख कर नित्य की तरह पिछवाड़े के रास्ते से मैं ने आ के कमरे का दरवाज़ा खटखटाया। भीतर सटर-पटर होने लगी। मैं कान लगा कर सुन रहा था। उस तरफ के किवाड़ की चिटखनी खुली, फिर बन्द हुई; तब जा कर मेरी तरफ का दरवाजा खुला। मैं ने आज भी पूछा—'कौन आया था ?' वह पहले कुछ सिटपिटायी, पर फिर निर्लज्जता पूर्वक बोली—'कोई

नहीं । खामखा वहम करोगे तो मैं फाँसी लगा कर मर जाऊँगी । बिना कारण के तुम इतने दिनों से मेरे प्राण सुखा रहे हो ।' मैं ने असल क्रोधावेश में कहा--"चोरी, तिस पर सीना जोरी ! रण्डी कहीं की ! तू कभी अपने आप फाँसी नहीं लगायगी, मैं जानता हूँ । इस लिये आज मैं ही........' यह कह कर मैं ने जेब से एक बड़ा रूमाल निकाल कर तत्काल उस के मुँह में ठूँस दिया ताकि वह शोर न मचाने पाये, और इस के बाद उस का गला पकड़ लिया और अत्यन्त निष्ठुरता से यथा शक्ति ज़ोर लगा कर उसे घोंटने लगा । वह छटपटाती थी, पर मैं ने उस की साड़ी भी उस के मुँह में ठूँस दी ताकि एक मात्र भी शब्द उस के मुँह से न निकले । जब वह प्राय: संज्ञा हीन हो गयी तो मैं ने उस के मुँह के भीतर स्थान-स्थान पर आर्सेनिक के इंजेकशन दे दिये और थोड़ा आर्सेनिक मुँह में भी डाल दिया । आर्सेनिक से उसके हृदय की रही-सही धड़कन भी बन्द हो गयी । उसका बक्स उसी कमरे में पड़ा था । मैं जानता था कि उस के पास यही एक बक्स है । चाबी ढूँढ़ कर मैं ने उसे खोला । भीतर कुछ गहने, चालीस रुपये नकद, कुछ कपड़े और चिट्ठियों का एक तोड़ा था । अधिकांश चिट्ठियाँ उस में मेरी थीं तीन चार चिट्ठियाँ गङ्गा राम नाम के किसी व्यक्ति की लिखी थीं; उन में भी मेरी ही तरह प्रेम-निवेदन दिया गया था । केवल एक पत्र उसके पति का था । उस छिनाल की हत्या का जो थोड़ा बहुत पश्चात्ताप मेरे मन में होने लगा, गङ्गाराम के पत्रों के पढ़ने के बाद वह भी जाता रहा और मुझे अपनी करतूत पर परम सन्तोष हुआ ।

सारा बक्स टटोल कर मैं अपने सब पत्र ले गया, एक भी न छोड़ा। इसके बाद बक्स बन्द करके यानी यथास्थान रख दिया। आर्सेनिक की शीशी को वहीं पर खुला छोड़कर और पिचकारी को जेब में रखकर मैं यह विचारने लगा कि किस उपाय से बाहर निकला जाय। दोनों तरफ़ के दरवाज़ों का भीतर से बन्द होना जरूरी था। मैंने कमरे के चारों ओर दृष्टि दौड़ायी। दक्षिण की ओर एक खिड़की थी। उसमें लोहे के डण्डे नहीं लगे थे खिड़की जरा ऊँचे पर थी। एक तिपाई के सहारे मैं उस पर चढ़ गया और वहाँ से निःशंक लुढ़ककर पिछवाड़े के बरामदे में उतर आया और चुपचाप चम्पत हो गया।

"पोस्टमार्टम इन्क्वायरी हुई। आत्महत्या का 'वर्डिक्ट' दिया गया, क्योंकि अधिकांश प्रमाणों से आत्महत्या की ही पुष्टि होती थी। फिर भी गङ्गाराम पर पुलिस की कड़ी नज़र रही। मुझ पर किसी को भी सन्देह नहीं हुआ, खुद नौकर को भी नहीं। मैं अत्यन्त धैर्य के साथ प्रायः एक सप्ताह तक उसी शहर में, उसी मकान में रहा। स्कूल में भी लड़कों को पढ़ाता रहा। तत्पश्चात् मेडिकल सार्टीफ़िकट लेकर घर वापस चला गया। इसके बाद फिर कभी मैं स्कूल को वापस नहीं गया। तब से इधर-उधर नाना वेशों में भटकता रहा हूँ। दो-तीन साल तक तो मुझे पन्ना की हत्या के कारण बिलकुल खेद नहीं हुआ। पर इसके बाद धीरे-धीरे मैं उसके दोषों को भूलता चला गया और उसके अपरूप-रूप तथा सुमधुर प्रेमालिङ्गन का स्मरण करके मेरा हृदय

हाय-हाय करने लगा। अब ज्यों-ज्यों वर्ष बीतते जाते हैं त्यों-त्यों उसकी स्मृति मेरे मन में उज्ज्वल से उज्ज्वलतर होती चली जाती है। इस बार जब बहुत व्याकुल हो उठा तो रह न सका और यहाँ आकर इसी कमरे में मैंने अपना डेरा कर लिया जहाँ मैंने उसकी हत्या की थी। मैं सोचता हूँ कि यदि वह भूत बन कर भी मुझे कभी दर्शन दे जाय तो कृतार्थ हो जाऊँ। पर... ।"

इतना कहकर कन्हैयालाल चुप हो गये। माथुर महाशय एकान्त मन से उनकी कहानी सुन रहे थे। लालटेन से धुँआ आने लगा था, जिसके कारण चिमनी काली पड़ गयी थी पर इस ओर किसी का ध्यान नहीं गया था।

कृपाशङ्कर ने कहा—"आपने अपने पूर्व जीवन की जो कथा सुनायी है, अगर वह सच है तो इसमें सन्देह नहीं कि बड़ी सनसनीदार है।"

कुछ देर तक और बैठ कर कृपाशङ्कर विदा हुये। कन्हैयालाल ने अलमारी से शराब की एक दूसरी बोतल निकाली और एक ग्लास में उसे उँड़ेल कर बिना सोडा के गटक गये। इसके बाद बत्ती बुझाकर पलंग पर लेट गये।

दूसरे दिन बहुत तड़के कन्हैयालाल के कमरे के बाहर, दरवाज़े पर बड़े जोर के धक्के पड़ने लगे। उस समय कन्हैयालाल सोये न। आघात पर आघत होने लगा तो उनकी नींद टूटी। चौंक कर उठ बैठे। किवाड़ खोलने पर देखते क्या हैं कि उनके "अन्तरङ्ग" मित्र वही माथुर सी० आई० डी० इन्सपेक्टर के लिबास में पुलिस के एक अन्य कर्मचारी तथा दो कान्स्टेबलों के

साथ उपस्थित हैं ! विस्मय विवाद होकर वह उनका मुँह ताकते रह गये। मिस्टर माथुर ने मन्द-मंद मुसुका कर कहा--"बाबू साहब ! मैं आप का बड़ा कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझे एक ऐसे रहस्य का पता लगाने में सहायता दी जिसकी उलझन में मैं दस साल से परेशान हूँ। आप को यह जान। कर आश्चर्य होगा कि पन्ना मेरी ही स्त्री थी। उसके चाल-चलन पर मुझे पहले से ही सन्देह था, इसलिये मैंने एक प्रकार से सम्बंध त्याग दिया था। पर जब उसकी रहस्यमय मृत्यु का समाचार मुझे मिला तो मेरा कौतूहल बढ़ा और मैंने निश्चय कर लिया कि इस रहस्य का पता अवश्य लगाऊँगा। पुलिस का कर्मचारी होने से इस विषय में मेरी उत्सुकता प्रबल हो उठी। घटना के प्राय: दो हफ्ते बाद मैं यहाँ पहुँचा था। मामले की तहकीकात करते ही शुरू से ही आप पर मुझे कुछ-कुछ संदेह होने लगा था। आत्महत्या की बात पर मुझे कभी यक़ीन नहीं आया। आप का पीछा मैं बहुत दिनों से कर रहा था। इस बार इस शहर में खूब अच्छी तरह आप का परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं बहुत दिनों से इस चेष्टा में था कि आप के ही मुँह से आपकी कहानी सुनूँ। कल मेरे हिप्नोटिज्म की अवश्य कारवाई सफल हुई। फिर एक बार इसके लिये आप को धन्यवाद देता हूँ। अब चलिये ! कृपया अदालत को भी अपनी 'प्यारी' पन्ना की हत्या का दास्तान सुनाइये।" यह कहकर वह व्यङ्गपूर्वक मुसकराने लगे।

कन्हैयालाल काठ की मूर्ति की तरह खड़े रहे। कान्स्टेबल उन्हें हथकड़ पहनाने लगे।

———०———